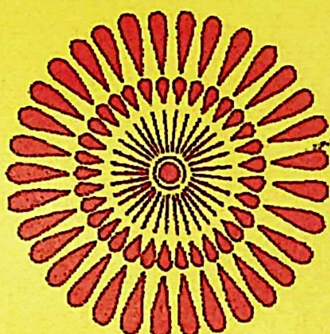
श्रीविश्वनाथो जयति



हठयोग संहिता

भाषानुवादसहित

श्रीभारतधर्म महामण्डल
प्रधान कार्यालय

चतुर्थ आवृत्ति सम्वत् २०७२ मूल्य २५ रुपये

श्रीविश्वनाथो जयति

हठयोग संहिता

भाषानुवादसहित

श्रीभारतधर्म महामण्डल
प्रधान कार्यालय

द्वारा

प्रकाशित

चतुर्थ आवृत्ति सम्वत् २०७२ मूल्य २५ रुपये

प्रकाशक-
श्रीभारतधर्म महामण्डल
लहुराबीर, वाराणसी-२२१००१

चतुर्थ संस्करण

प्राप्ति स्थान-
व्यवस्थापक, शास्त्र प्रकाशन विभाग
श्रीभारतधर्म महामण्डल
लहुराबीर, वाराणसी-२२१००१

मुद्रक-मयंक प्रेस, बुलानाला, वाराणसी

हठयोग संहिता के द्वितीय संस्करण की भूमिका

श्री भारतधर्म महामण्डल के संस्थापक एवं संचालक योगिराज भगवत्पूज्यपाद स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभु स्वयं योगसिद्ध महात्मा थे । अतः उन्होंने मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन चारों योगों के क्रिया-सिद्धान्त पर आधारित संहितायें श्रीभारतधर्म महामण्डल के शास्त्र प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित करायी थीं । पूज्यपाद का यह भी विचार था कि संस्कृत के साथ साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुदित होकर ये संहितायें प्रकाशित की जाँय, जिससे हिन्दी भाषा भाषी सज्जन इसको समझ सकें और लाभ उठावें। हठयोगसंहिता की यह द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित की जाती है कि योग की क्रिया को सुयोग्य योगी गुरु से सीखकर ही इसका अभ्यास करना चाहिये । बिना गुरु की सहायता से स्वयं करने से हानि होने की अधिक सम्भावना है ।

योग साधन से मन जितना शीघ्र एकाग्र होता है, उतना अन्य किसी भी उपाय से नहीं होता है । मन एकाग्र करने में योग के आसन बहुत सहायक होते हैं। योग के साधक जिज्ञासु सज्जन इससे समुचित लाभ उठायेंगे तो श्रीभारतधर्म महामण्डल का प्रयास सफल होगा ।

इस समय पश्चिमी देशों का अनुकरण करके लोग अपनी संस्कृति और अपने धर्म की ओर से प्रायः विमुख दिखायी पड़ते हैं; दूसरी ओर पश्चिमी देशों के लोग प्रचुर भौतिक विलासिता का उपभोग कर भी उसमें शान्ति नहीं पा रहे है। अतः शान्ति पाने की आशाभरी दृष्टि से भारत की ओर आकृष्ट हो रहे हैं । प्राचीन समय से ही भारत देश पृथ्वी भर के मनुष्यों को आध्यात्मिक विषयों का संदेश देकर शान्ति प्रदान कराता आया है और इस समय तो इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है । सनातनधर्मी हिन्दुओं की प्राचीनतम विराट धर्मसंस्था अपने जीवन के प्रारम्भ काल से ही मानवजाति को नित्य शान्ति का संदेश देता आया है, योग साधनों के

द्वारा शीघ्र मन का निरोध हो जाने से मनुष्य अन्तर्मुख होता है। तभी उसको स्थायी सुख शान्ति प्राप्ति होती हैं मनुष्यों के अधिकार और प्रवृत्ति के अनुसार हमारे योग के चार प्रकार की साधना-शैलियाँ है, उन्हीं को मन्त्रयोग, हठयोग, राजयोग और लययोग कहते हैं।

श्रीभारतधर्म महामण्डल सनातनधर्मियोंकी प्राचीनतम विराट धर्मसंस्था है इसके द्वारा उपर्युक्त चारों संहितायें राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनुवाद के साथ प्रकाशित हुई हैं । हठयोग संहिता का यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है । छपाई और कागजों के अतिशय मूल्यवृद्धि होने के कारण हमें खेद के साथ इसका मूल्य बढ़ाना पड़ा है । आशा है,

राशिपूर्णिमा
सम्बत् २०३५ विक्रमीय

निवेदक-
श्रीभारतधर्म महामण्डल
लहुराबीर, वाराणसी

प्रकाशकीय निवेदन

विश्व के विश्रान्त नर-नारी भौतिकवादी, भोग संस्कृति के दुश्चक्र में पिस रहे हैं। अशान्त मन और चित्त के कारण अवसाद, अशान्ति, अस्थिर और विचलित चित्तवृत्ति मनोरोगियों की संख्या सारी दुनिया में बढ़ रही है। चिकित्सा विज्ञान अवसाद और मनोरोगियों की बढ़ती संख्या से चिन्तित है। भारत में नौ दस साल के बच्चे आत्महत्या कर रहे हैं। किसानों की संख्या लाखों में है। परिवारिक कलह, कर्ज, असफलता, अनिश्चय आत्महत्या के लिए ढकेल रहे हैं। बलात्कार जैसा पाशविक कृत्य सामान्य हो गया है। शिक्षित वर्ग अर्थलोलुपता, उत्कोच तथा भ्रष्टाचार से धानार्जन करने की होड़ में है।

स्वाभाविक हैं कि इनमें से किसी के चित्त में शान्ति नहीं है। उध्विग्नता, अनिद्रा, भय, अनिश्चितता और आशंकाओं के थपेड़ों से ग्रस्त नर-नारियों की चित्तवृत्ति का संस्कार और मानसिक शान्ति का मार्ग केवल भारत के पास है। वर्त्तमान परिस्थिति में प्राणियों का कल्याण और त्राण श्रीभारतधर्ममहामण्डलका उद्देश्य है। इन तमाम कष्टों के निवारण के लिए परमपूज्य महर्षि ज्ञानानन्द जी महाराज ने काफी पहले उपाय ढूंढे थे। हठयोग संहिता वह अद्वितीय औषधि है जो भ्रान्ति और अज्ञान में डूबी मानव जाति का उद्धार कर सकती है। महामण्डल के अनेकानेक ग्रंथ रत्नों में इसीलिए इसकी आवृत्ति को वरीयता दी गई।

हम प्रयासरत हैं कि सभी अलभ्य और दुर्लभ ग्रंथरत्नों का पुर्नप्रकाशन यथाशीघ्र और अल्प मूल्य में हो। इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोग के लिए महामण्डल के सहयोगी न्यास मण्डलों यथा श्री वेणीमाधवपुर न्यास आदि के निरन्तर सहयोग के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। प्रार्थना है कि महर्षि ज्ञानानन्द जी हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें कि सनातन धर्म की दुर्लभ निधियों को प्रकाश में लाने में हम सहायक और समर्थ हों। इस निवेदन के साथ चतुर्थ आवृत्ति प्रस्तुत है।

श्री कृष्णजन्माष्टमी
सम्वत् २०७२
२०१५ ई.

धर्मशील चतुर्वेदी
चीफ सेक्रेटरी
श्रीभारतधर्म महामण्डल, लहुराबीर, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

विषय					पृष्ठ

विषय				पृष्ठ

विषय				पृष्ठ

श्री विश्वनाथो जयति ।

हठयोगसंहिता

मङ्गलाचरण

जो चित्स्वरुप ब्रह्म मन, बुद्धि और वचनसे किसी प्रकार जाने नहीं जाते हैं और जिनको योगिगण ज्योतिरूपमें दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं, जिनकी आधिभौतिक ज्योतिसे नेत्र दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, जिनकी आदिदैविक ज्योतिरूप सूर्यमण्डल जगत्को प्रकाशित करता है और जिनकी आध्यात्मिक ज्योतिसे जगद्भासमान होता है, ऐसे ज्योतिर्मय परमात्माको नमस्कार है ।।१।। मार्कण्डेय, भारद्वाज, मरीचि, पराशर, विश्वामित्र, जैमिनि और भृगु आदि पूज्य चरण महर्षियोंकी कृपासे हठयोगका प्रकाश जगत् में हुआ है ।।२-३।। जिन पूज्यचरण आचार्योंने लौकिक क्रिया द्वारा अलौकिकशक्तिको प्राप्त करने की शिक्षा दी है एवं जिन्होंने स्थूलशक्तिविशिष्ट मन्दमति साधकको भी सूक्ष्मशक्ति प्राप्त करने, और तत्त्वज्ञान लाभ करके कृतकृत्य होनेके सुकौशलपूर्ण

मङ्गलाचरणम्

चित्तप्रज्ञावचोभिः कथमपि न हि यद् गम्यते चित्स्वरूपम् ।
नेत्रे द्रष्टुं क्षमेते निजविषयचयं ज्योतिरासाद्य यस्य ।।
यद्भासा सूर्यदेवः प्रतपति जगतां मङ्गलं यस्य दीप्त्या ।
विश्वं देदीप्यमानं भवति स परमः पूरुषो वन्दनीयः ।।१।।

मार्कण्डेयो भरद्वाजो मरीचिरथ जैमिनिः ।
पराशरो भृगुश्चापि विश्वामित्रादयश्च ये ।।२।।
एषां पूज्याङ्घ्रिपद्मानामृषीणां कृपयाऽनिशम् ।
हठयोगविकाशी वै जगत्यत्र विजृम्भते ।।३।।
लौकिकक्रियया पूर्वाचार्यास्ते परमर्षयः ।
दिव्यशक्तयाप्तये युक्ति निर्दिशन्ति स्म शोभनाम् ।।४।।
सुकौशलभरास्तावद्धठयोगक्रियाः शुभाः ।
प्रदर्शिताः साधकानां सूक्ष्मतत्त्वोपलब्धये ।।५।।
तत्त्वज्ञानाय च परं मुनिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः ।
संहिता हठयोगस्य तान्नत्वारभ्यतेऽधुना ।।६।।

अतिसुगम साधनमुक्त हठयोगके उपाय बताकर कृतकृत्य किया है उनको बारम्बार नमस्कार करके हठयोग संहिता प्रारम्भ की जाती है ।। १६ ।।

हठयोगके लक्षण

प्राण, अपान, नाद, बिन्दु, जीवत्मा और परमात्मा, इन सबके मेलसे जो बनता है उसीका नाम घट है अर्थात् स्थूलशरीर को घट कहते हैं ।।१।। जीवदेह जलस्थित कच्चे घड़ेकी नांई सदा जीर्णताको प्राप्त हुआ करता है, योगरूप अग्निसे उस घटको पकाकर उसकी शुद्धि करनी चाहिये ।।२।। प्रथम हठयोगके द्वारा जीर्यमाण इस स्थूलदेहको दृढ़ करते हुए पुनः सूक्ष्मशरीरको योगयुक्त करना चाहिये ।।३।। स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीरका दूसरा परिणाम है इस कारण जैसे ककारादि वर्णोंके अभ्यास द्वारा शास्त्रज्ञान क्रमशः लाभ होता है, उसी प्रकार स्थूलशरीरके साधनोंके द्वारा अन्तःकारणको योगयुक्त करनेको हठयोग कहते हैं ।।४-५।। शोधन, दृढ़ता, स्थर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्षत्व और निर्लिप्तता, ये सात स्थूलशरीरके साधन कहे गये हैं, इनके अभ्याससे साधक

हठयोगलक्षणम्

प्राणापाननादिबिन्दुजीवात्मपरमात्मनाम् ।
मेलनाद् घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ।।१।।
आमकुम्भमिवाम्भस्थं जीर्यमाणं सदा घटम् ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धि समाचरेत् ।।२।।
हठयोगेन प्रथमं जीर्यमाणामिमां तनुम् ।
द्रढयन् सूक्ष्मदेहं वै कुर्याद्योगयुजं पुनः ।।३।।
स्थूलः सूक्ष्मस्य देहो वै परिणामान्तरं यतः ।
कादिवर्णान् समभ्यस्य शास्त्रज्ञानं यथाक्रमम् ।।४।।
यथोपलभ्यते तद्वत् स्थूलदेहस्य साधनैः ।
योगेन मनसो योगो हठयोगः प्रकीर्तितः ।।५।।
शोधनं दृढता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम् ।
प्रत्यक्षमपि निर्लिप्तं घटस्य सप्त साधनम् ।।६।।
एषामभ्यासतो योगी समाधिमधिगच्छति ।।७।।

समाधि प्राप्त करता है ॥६-७॥

हठयोगके अङ्ग

षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि हठयोगके ये सात अङ्ग हैं ॥१॥

हठयोगके अङ्गोंके साधनका फल

षट्कर्म द्वारा शोधन, आसन द्वारा दृढ़ता, मुद्रा द्वारा स्थिरता, प्रत्याहार द्वारा धीरता, प्राणायाम द्वारा लाघव, ध्यान द्वारा आत्माका साक्षात्कार और समाधि द्वारा निर्लिप्तता प्राप्त होकर मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥१-२॥

षट्कर्मोंके भेद

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति ये षट्कर्म कहाते हैं, इनका साधन करना चाहिये ॥१॥

हठयोगाङ्गानि

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः ।
ध्यानं समाधिः सप्तैवाङ्गानि स्युर्हठस्य योगस्य ॥१॥

हठयोगाङ्गसाधनफलानि

षट्कर्मणा शोधनञ्च आसनेन भवेद् दृढ़म् ।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥१॥
प्राणायामाल्लाघवञ्च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः ।
समाधिना निर्लिप्तश्च मुक्तिरेव न संशयः ॥२॥

षट्कर्मभेदाः

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी त्राटकन्तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१॥

धौतिके भेद

अन्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति, और मूलशोधन, ये चार प्रकारकी धौतियां होती हैं इनको करके शरीरकी निर्मलता साधन करना उचित है ।।२।।

अन्तर्धौतिके भेद

वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत, शरीरको निर्मल करने के लिये ये चार प्रकारकी अन्तर्धौतियां होती हैं ।।३।।

वातसार धौति

होठोंको काकचञ्चुकी नांई करके धीरे-धीरे वायु पानकरे और वायुको उदरमें परिचालित करके पश्चान्मार्ग (गुदा) द्वारा उसको शनैः शनैः रेचन कर दिया जाय । यह वातसार अतीव गोपनीय है, इसके द्वारा शरीरका निर्मलतासाधन, सर्वप्रकारके रोगोंका नाश और जठराग्निकी वृद्धि हुआ करती है ।।४-५।

वारिसार धौति

मुख द्वारा कण्ठपर्यन्त जलभरकर शनैः शनैः उदरमें भरे, उदरमें जल

धौतिभेदाः

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्तु निर्मलम् ।।२।।

अन्तर्धौतिभेदाः

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम् ।
घटनिर्मलतार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ।।३।।

वातसारधौतिः

काकचञ्चुवदास्येन पि द्वायुं शनैः शनैः ।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ।।४।।
वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम् ।
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्द्धकम् ।।५।।

वारिसारधौतिः

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिबेच्छनैः ।
चालयेद् गुदमार्गेण चोदराद्रेचयेदधः ।।६।।

चलित करके उदर से अधोमार्ग द्वारा नीचे रेचन कर दे, यही वारिसार कहाता है। यह वारिसार परम गोपनीय है, इसके द्वारा देहकी निर्मलता होती है, सुतरां यदि यत्नपूर्वक इसका साधन किया जाय तो देवदेह लाभ होता है, जो मनुष्य इस सर्वश्रेष्ठ वारिसार धौतिका प्रयत्नसे साधन करते हैं वे मलदेहको शुद्ध करके देवताओं की नांई सुन्दर देहको प्राप्त होते हैं ॥६-८॥

अग्निसार धौति

मेरुदण्डमें नाभिग्रंथिको एक शतबार संयुक्त किया जाय तो उसीका नाम अग्निसारधौति कहाता है । यह धौति योगिगणको योगसिद्धि प्रदान करती है । इस धौति द्वारा उदरामय (उदररोग) की सब पीडाएँ नष्ट हो जाती हैं और इसके साधनसे जठराग्नि बहुत ही वृद्धिको प्राप्त होती है । यह धौति परम गोपनीय है । यह सुरगणके लिये भी दुष्प्राप्य है । इस धौति द्वारा ही मनुष्यगण देवताओंके तुल्य देहको प्राप्त कर सकते हैं, इसमें सन्देह मात्र नहीं है ॥९-१०॥

बहिष्कृत धौति

काकीमुद्रा द्वारा वायुको उदरमें भरकर और उस वायुको अर्द्ध प्रहर तक

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ।
साधयेद्यः प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥७॥
वारिसारं परां धौतिं साधयेद्यः प्रयत्नतः ।
मलदेहं शोधयित्वा देवदेहं प्रपद्यते ॥८॥

अग्निसारधौतिः

नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।
अग्निसारमियं धौर्तिर्योगिनां योगसिद्धिदा ॥९॥
उदरामयकं हत्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत् ।
एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्ल्लभा ।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥

बहिष्कृतधौतिः

काकीमुद्रां साधयित्वा पूरयेत्मरुतोदरम् ।
धारयेदर्द्धयामन्तु चालयेद् गुदवर्त्मना ॥११
एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन ॥१२॥

उदरमें रखकर पश्चात् अधोमार्ग द्वारा निकाल देनेसे बहिष्कृतधौति कहाती है। यह धौति परम गोपनीय है, कभी प्रकाशित नहीं करनी चाहिये ॥११-१२॥

बहिष्कृत धौतिका अङ्ग प्रक्षालन

नाभिमग्न जलमें खड़े होकर शक्ति नाडीको बाहर निकाल कर जब तक उसका मल पूर्णरूपेण धुल न जाय तब तक उसको कर द्वारा प्रक्षालन किया जाय पश्चात् शुद्धकी हुई नाड़ी पुनः उदरमें भर ली जाय। यह प्रक्षालन देवतागणके लिये भी दुर्लभ है, यह गोपनीय है और केवल इस धौति द्वारा ही देवताके सदृश देहकी प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं। जब तक साधक एक यामार्द्ध समय तक वायु को रोक नहीं सके तब तक इस बहिष्कृत महाधौतिका साधन नहीं होता है ॥१३-१५॥

दन्तधौतिके भेद

दन्तमूलधौति, जिह्वामूलधौति, कर्णरन्ध्रद्वयधौति और कपालरन्ध्रधौति, ये पाँच दन्तधौति के भेद हैं ॥१६॥

बहिष्कृताङ्गभूतप्रक्षालनम्

नाभिमग्नजले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्ज्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्ज्जनम् ॥१३॥
तावत्प्रक्षाल्य नाडीञ्च उदरे वेशयेत् पुनः।
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥१४
केवलं धौतिमत्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम।
यामार्द्धं धारणाशक्तिं यावन्न साधयेन्नरः।
बहिष्कृतं महद्धौतिस्तावच्चेव न जायते ॥१५॥

दन्तधौति भेदाः

दन्तस्य चैव जिह्वाया मूलं रन्ध्रं च कर्णयो :।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते ॥१६॥

दन्तमूल धौतिः

खादिरेण रसेनाथ शुद्धया च मृदा तथा।
मार्ज्जयेद्दन्तमूलञ्च यावत्किल्विषमाहरेत् ॥१७॥

दन्तमूलधौति

खादिररस द्वारा अथवा विशुद्ध मृत्तिका द्वारा जब तक मल दूर न हो जाय तब तक दन्तमूल मार्जन करना उचित है ।१७। योगिगणके योगसाधनमें दन्तमूलधौति प्रधान कहाती है । योगवित् साधक प्रतिदिन प्रभातमें दन्तरक्षाके निमित्त यह धौति करे । दन्तमूल धौति आदि कार्य्योंके करने पर योगियोंको बल प्राप्त होता है ।।१८।।

जिह्वामूल धौति

अब जिह्वाशोधनका कारण वर्णन किया जाता है । जिह्वाशोधन द्वारा जिह्वाकी दीर्घता साधन और जरा, मरण एवं नाना रोगादिकी शान्ति हुआ करती है ।।१९।। तंर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका, इन तीनों अङ्गलियोंको एकत्र करके गलेके भीतर प्रवेशकर जिह्वाके मलको मार्जन किया जाय ।।२०।। शनैः शनैः इस प्रकारसे मार्जन करनेसे कफदोषका नाश हो जाता है । पुनः पुनः नवनीत द्वारा जिह्वा मार्जन और दोहन करे ।।२१।। और लोहयन्त्र द्वारा जिह्वा के अग्रभाग को शनैः शनैः आकर्षण करे । प्रतिदिन प्रातः काल और सूर्य अस्त के

दन्तमूलं परा धौतिर्योगिनां योगसाधने ।
नित्य कुर्यात् प्रभाते च दन्तरक्षाञ्च योगवित् ।
दन्तमूलधावनादिकार्येषु योगिनां बलम् ।।१८।।

जिह्वामूलधौतिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।
जरामरणरोगादीन्नाशयेद्दीर्घलम्बिका ।।१९।।
तर्ज्जनी मध्यमाऽनामा इत्यङ्गुलित्रयं नरः ।
वेशयेद् गलमध्ये तु मार्ज्जयेल्लम्बिकामलम् ।।२०।।
शनैः शनैर्मार्ज्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ।
मार्ज्जयेन्नवनीतेन दाहयेच्च पुनः पुनः ।।२१।।
तदग्रं लौह-यन्त्रेण कर्षयित्वा शनैः शनै : ।
नित्यं कुर्यात्प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके ।।
एवं कृते च नित्यं सा लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।।२२।।

समय यत्नपूर्वक इस धौतिका अभ्यास करना उचित है, नित्य ऐसा करनेसे जिह्वा दीर्घता को प्राप्त हो जाती है ।।२२।।

कर्णरन्ध्र धौति

तर्जनी और अनामिका इन दोनों अङ्गुलियों द्वारा कर्णरन्ध्र-युगल मार्जन करे । प्रतिदिन ऐसा करनेसे एक नादका प्रकाश होता है ।।२३।।

कपालरन्ध्र धौति

दक्षिण हस्तकी वृद्ध अङ्गुलि (अंगूठे) के द्वारा कपालरन्ध्र मार्जन करे । इसका प्रतिदिन भोजनके अन्तमें, निद्रा के अन्तमें और दिनके अन्तमें साधन करें ।।२४।। इस अभ्याससे कफ दोषोंका नाश होता है, इस कपालरन्ध्रधौतिके साधनसे नाड़ियोंकी निर्मलता और दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है ।।२५।।

हृद्धौति के भेद

हृद्धौति तीन प्रकारकी होती है, यथा-दण्डधौति, वमनधौति और वासोधौति ।।२६।।

कर्णरन्ध्रयोर्धौतिः

तर्ज्जन्यनामिकायोगान्माज्र्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः ।
नित्यमभ्यासयोगेन नादो याति प्रकाशताम् ।।२३।।

कपालरन्ध्रधौतिः

वृद्धाङ्गुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरन्ध्रकम् ।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ।।२४।।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ।
नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।।२५।।

हृद्धौतिभेदाः

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद्दण्डवमनवाससा ।।२६।।

दण्डधौतिः

रम्भाहरिद्रयोर्दण्डं वेत्रदण्ड तथैव च ।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ।।२७।।
कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना ।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम् ।।२८।।

दण्ड धौती

रम्भादण्ड, हरिद्रादण्ड अथवा वेत्रदण्ड हृदयके बीच बार-बार प्रवेश करके धीरे-धीरे निकालनेसे दण्डधौतिका साधन होता है ॥२७॥ इस दण्ड धौतिके साधनसे ऊर्द्धव मार्ग द्वारा कफ, पित्त और क्लेद आदि निकाले जाते हैं और इससे हृदय रोग की शान्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥२८॥

वमन धौति

भोजनके अन्तमें धीमान् साधक कण्ठपर्यन्त वारि पान करके तत्पश्चात् कुछ काल तक ऊर्द्धव नयन रह कर वमन द्वारा उस जलको निकाल डाले, यह वमनधौति कहाती है । प्रतिदिन इस धौतिके अभ्याससे कफ और पित्तका नाश हो जाता है ॥२९॥

वासो धौति

चार अंगुल चौड़ा सूक्ष्म वस्त्र धीरे-धीरे ग्रास करके तत्पश्चात् शनैः शनैः वस्त्रको बाहर निकालनेसे वासोधौति कहाती है ॥३०॥ इस वासोधौतिके अभ्याससे गुल्म, ज्वर , प्लीहा, कुष्ट, कफ और पित्त रोगोंकी शान्ति होती है।

वमनधौतिः

भोजनान्ते पिवेद्वारि चाकण्ठपूरितं सुधीः ।
ऊर्द्ध्वां दृष्टि क्षणं कृत्वा तज्जलं वामयेत्पुनः ॥
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥२९॥

वासोधौतिः

चतुरङ्गुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनेग्रसेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत्प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥३०॥
गुल्मज्वरः कफः पित्तं प्लीहा कुष्ठं च नश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टी च स्यातां तस्य दिने दिने ॥३१॥

मूलशोधनधौतिः

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ॥३२॥
पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनापि वा ।
यत्नेन क्षालयेद् गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥३३॥

और प्रतिदिन आरोग्य बल और पुष्टि की प्राप्ति होती है ।।३१।।

मूलशोधन धौति

जब तक मूलशोधन नहीं किया जाता है तब तक अपान वायुकी क्रूरता विद्यमान रहती है इस कारण यत्नपूर्वक मूलशोधन करना उचित है ।।३२।। हरिद्रा मूलके दण्डसे अथवा मध्यमा अङ्गुलि द्वारा और जलसे पुनः पुनः यत्नपूर्वक गुहा स्थानको प्रक्षालन करना उचित है ।।३३।। मूलशोधन द्वारा कोष्ठ की बद्धता, आम और अजीर्णता नाश को प्राप्त होती है, देहमें कान्ति और पुष्टिकी वृद्धि हो जाती है और जठराग्नि वृद्धिको प्राप्त होती है ।।३४।।

वस्ति के भेद

वस्ति के दो भेद है, यथा-जलवस्ति और शुष्कवस्ति । जलवस्ति जलमें और शुष्कवस्ति स्थलमें सदा साधन की जाती है ।।३५।।

जल वस्ति

नाभिमग्न जलमें अवस्थित रहकर उत्कटासन द्वारा गुह्यदेशका आकुंचन और प्रसारण करके जलवस्तिको करे ।।३६।। जलवस्ति साधन द्वारा

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत् ।
कारणं कान्तपुष्ट्योश्च वह्निमण्डलदीपनम् ।।३४।।

वस्तिभेदाः

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्तिर्वै द्विविधा स्मृता ।
जलवस्तिं जले कुर्याच्छुष्कवस्तिं सदा क्षितौ ।।३५।।

जलवस्तिः

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् ।
आकुञ्चनं प्रसारञ्च जलवस्तिं समाचरेत् ।।३६।।
प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ।।३७।।

शुष्कवस्तिः

पश्चिमोत्तानतो वस्ति चालयित्वा शनैरधः ।
अश्विनीमुद्रया पायुं कुञ्चयेच्च प्रसारयेत् ।।३८।।
एवमभ्यासयोगेन कोष्टदोषो न विद्यते ।
विवर्द्धयेज्जाठराऽग्निमामवातं विनाशयेत् ।।३९।।

प्रमेह, उदावर्त और क्रूरवायु विनाशको प्राप्त हो जाता है और साधक निरोग और कामदेव के समान होता है ।।३७।।

शुष्क वस्ति

पश्चिमोत्तान आसन द्वारा शनैः शनैः वस्तिको नीचेकी ओर चालन करके अश्विनीमुद्रा द्वारा गुह्यस्थानको आकुंचन और प्रसारण करे ।।३८।। इस वस्तिके अभ्याससे कोष्ट दोष और आम वात की शान्ति होती है और जठर-अग्नि की वृद्धि होती है ।।३९।।

नेति प्रकरण

आधेहाथके परिमाणका सूक्ष्म सूत्र नासिकाके बीचमें प्रवेश करके पश्चात् उसको मुख द्वारा निर्गत करनेसे नेतिकर्म कहाता है ।।४०।। नेतिकर्मके साधनसे खेचरी मुद्राकी सिद्धि होती है, कफदोषका नाश होता है और दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है ।।४१।।

लौलिकी प्रकरण

प्रबल वेगसे जठरको दोनो ओर भ्रमित करनेसे लौलिकी क्रियाका

नेतिप्रकरणम्

वितस्तिमात्रं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्प्रोच्यते नेतिकर्म तत् ।।४०।।
साधनान्नेतिकार्यस्य खेचरी सिद्धिमाप्नुयात् ।
कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।।४१।।

लौलिकीप्रकरणम्

अमन्दवेगकैस्तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः ।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्धनम् ।।४२।।

त्राटकप्रकरणम्

निमेषोन्मेषकौ त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् ।
यावदश्रूणि मुञ्चन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ।।४३।।
एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।।४४।।

साधन होता है, इस क्रिया द्वारा सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति और देहानल की वृद्धि हुआ करती है । यही क्रिया और नाना क्रियायों में सहायकारी होती है ॥४२॥

त्राटक प्रकरण

जब तक नेत्रद्वय से अश्रुपात न हो तबतक अनिमेषपूर्वक किसी सूक्ष्म पदार्थकी ओर दृष्टिपात किये रहनेका नाम विद्वान् लोग त्राटक योग कहते हैं ॥४३॥ त्राटक योगके अभ्यास करनेसे शाम्भवी मुद्रा अवश्य होती है, और इसके साधन से नेत्र रोगोंकी शान्ति और दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति हुआ करती है ॥४४॥

कपालभाति भेद

कपालभाति तीन प्रकार की होती है, यथा-वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति । कपालभाति साधन से कफदोष की शान्ति हुआ करती है ॥४५॥

कपालभातिभेदाः

वातक्रमव्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत् ॥४५॥

वातक्रमकपालभातिः

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ।
पिङ्गलया पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥४६॥
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥४७॥

व्युत्क्रमकपालभातिः

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥४८

शीत्क्रमकपालभातिः

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥४९॥

वातक्रम कपालभाति प्रयोग

इडा अर्थात् वाम नासा द्वारा वायुका पूरक करके पिङ्गला अर्थात दक्षिण नासाद्वार उसका रेचना किया जाय और पुनः दक्षिण नासा द्वारा वायुका पूरक करके वाम नासा द्वारा उसका रेचन करनेसे वातक्रम कपालभाति क्रिया हुआ करती है ।।४६।। पूरक और रेचक करते समय वेग प्रयोग नहीं रुकना चाहिये अर्थात् शनैः शनैः वायु ग्रहण और त्याग करना उचित है । इस क्रियाके अभ्यास से कफदोषकी शान्ति होती है ।।४७

व्युत्क्रम कपालभाति प्रयोग

नासाद्वय द्वारा वारिग्रहण करके मुख द्वारा निर्गत किया जाय और पुनः मुख द्वारा वारिग्रहण करके नासिका द्वारा बहिर्गत करनेसे तथा पुनः पुनः ऐसा करते रहनेसे व्युत्क्रम कपालभाति क्रियाका साधन होता है । इसके द्वारा कफ दोष दूर हो जाता है ।।४८।।

शीत्क्रम कपालभाति प्रयोग

मुख द्वारा शीत्कार पूर्वक वायु ग्रहण करके नासिका द्वारा निकाल देने

भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदोषं निवारयेत् ।
न जायते च वार्द्धक्यं ज्वरो नैव प्रजायते ।।५०।।

अथाऽऽसनप्रकरणम्

आसनलक्षणं संख्या च

अभ्यासाद्यस्य देहोऽयं योगौपयिकतां व्रजेत् ।
मनश्च स्थिरतामेति प्रोच्यते तदिहाऽऽसनम् ।।१।।
आसनानि समस्तानि यावत्यो जीवयोनयः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि तु ।।२।।
तेषां मध्ये विषिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
आसनानि त्रयस्त्रिंशन्मर्त्त्यलोके शुभानि वै ।।३।।

आसनस्थानदेशवर्णनम्

सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे ।
धनुःप्रमाणपर्यन्तं शिलाऽग्निजलवर्जिते ।।४।।

से शीत्क्रम कपालभातिका साधन होता है। इस क्रियाके साधनसे शरीर कामदेव के तुल्य होता है ॥४९॥ वार्द्धक्य और ज्वरका उदय कभी नहीं होता और कफ दोषसे बचकर शरीर निरोग बना रहता है ॥५०॥

आसन प्रकरण

आसन के लक्षण और संख्या

जिस तरह बैठनेके अभ्याससे शरीर योगोपयोगी होता है और मन स्थिर होता है उसको आसन कहते है ॥१॥ जितनी योनिके प्राणी हैं आसनों की संख्या भी उतनी ही जानना उचित है। देवादिदेव महादेव ने चौरासी लक्ष आसनों का वर्णन किया था ॥२॥ उनमें से चौरासी आसन सबसे श्रेष्ठ हैं, और उनके चौरासियों से मानवलोक में तैंतीस आसन कल्याण को देने वाले हैं ॥३॥

आसन के स्थान और देश का वर्णन

जहाँ सुराज्य हो, जो देश धार्मिक हो, जहां सुभिक्ष रहे, जिस देशमें

एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ॥५॥
अल्पद्वारमरन्ध्रगर्त्तविवरं नाऽत्युच्चनीचायतं
सम्यग्गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम्।
बाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितं।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥६॥
एवंविधे मठे स्थित्वा सर्वचिन्ताविवर्जितः।
गुरूपदिष्टमार्गेण योगमेवं समभ्यसेत् ॥७॥

आसनभेदाः

सिद्धं च स्वस्तिकं पद्मं बद्धपद्मं च भद्रकम्।
मुक्तं वज्रं च सिहं च गोमुखं वीरमेव च ॥८॥
धनुर्मृतं तथा गुप्तं मात्स्यं मात्स्येन्द्रमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुत्कटं संकटं तथा ॥९॥
मायूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं माण्डूकं गरुडं वृषम् ॥१०॥

किसी प्रकारका उपद्रव न रहे वहाँ शिला, अग्नि और जलसे धनुः प्रमाण परिमित दूर पर रहकर एकान्त स्थानमें छोटीसी मठिका बनाकर योगीको योग साधन करना उचित है। योग साधन गृहमें छोटा द्वार होना उचित है, वह घर छेद और बिल आदि से रहित हो, वह न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा, गोमय से लिपा हो, और सब प्रकार के कीटों से रहित हो तभी साधन उपयोग होगा। उस मठके बाहर एक मण्डप, एक वेदी और एक कूप रहना उचित है। ऐसा वृक्ष आदिसे रमणीय स्थान प्राकार द्वारा वेष्टित् होनेसे वह योगाभ्यास के उपयोगी होता है और योगियों को सिद्धि दान कर सकता है ।।४-६।।

इस प्रकार से मठ में स्थित रह कर सब प्रकार की चिन्ताओं को त्याग कर गुरु उपदिष्ट साधन अनुसार अभ्यास करना मुमुक्षु को उचित है ।।७।।

आसनभेद

सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, सिंहासन, गोमुखआसन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानआसन, उष्कटासन,

---

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजगं योगमासनम्।
आसनानि त्रयस्त्रिंशत्सिद्धिदानीति निश्चितम् ।।११।।

सिद्धासनम्

वशीकृतेन्द्रियग्रामो वामगुल्फेन गुह्यकम्।
दक्षिणेन च लिङ्गस्य मूलमापीडयेत्ततः ।।१२।।
मेरुदण्डमृजूकुर्वन्नास्यते यत्सुखासनम्।
सिद्धासनमिति प्रोक्तं योगसिद्धिकरं परम् ।।१३।।

स्वस्तिकासनम्

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक्पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।।१४।।

पद्मासनम्

दक्षिणं चरणं वामे दक्षिणोरौ च सव्यकम्।
अक्लेशमासनं यद्धि पद्मासनमितीरितम् ।।१५

संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, मण्डूकासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन, और योगासन, ये तैंतीस मर्त्यलोक में सिद्धि देने वाले हैं ॥८॥११॥

सिद्धासन

जितेन्द्रिय साधक जब वामगुल्फ द्वारा गुदाको दबाकर और दक्षिण गुल्फ द्वारा लिङ्ग मूल दबाकर मेरुदण्डको सीधा करता हुआ सुखसे बैठता है उसको सिद्धासन कहते हैं, यह योग सिद्धिकर है ॥१२-१३॥

स्वस्तिकासन

जानु द्वय और ऊरु युगलके बीचमें चरण तल द्वय रखकर त्रिकोणाकार आसन बद्ध होकर सीधी रीतिपर बैठनेका नाम स्वस्तिकासन कहाता है ॥१४॥

पद्मासन

क्लेश रहित होकर बैठते हुए दक्षिण पैर वाम ऊरुके ऊपर और वाम पैर दक्षिण ऊरुके ऊपर रखकर जो सुगम आसन होता है उसको पद्मासन कहते हैं ॥१५॥

बद्धपद्मासनम्

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविनाशनं सुखकरं बद्धासनं प्रोच्यते ॥१६॥

भद्रासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याऽधो व्युत्क्रमेण समाहितः ।
पदाङ्गुष्ठौ कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः ॥१७॥
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१८॥

मुक्तासनम्

पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि ।
समकायशिरोग्रीवं मुक्तासनन्तु सिद्धिदम् ॥१९॥

बद्धपद्मासन

दक्षिण पाद वाम ऊरुके ऊपर और वाम पाद दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थापना करके कर द्वय द्वारा पीठ से घूमकर चरणों की वृद्ध अंगुली धारण करके चिबुक वक्षस्थल पर स्थापन करके नासाग्रभाग दर्शन करनेसे बद्ध पद्मासन हुआ करता है, इस आसन द्वारा नाना प्रकारकी व्याधियोंका नाश होता है ।।१६।।

भद्रासन

दोनों गुल्फ वृषण के नीचे विपरीत भावसे स्थापना करके पृष्ठसे करद्वय चलाकर दोनों चरणोंकी बृद्धाङ्गुली धारणपूर्वक जालन्धर बन्ध करते हुए नासिकाके अग्रभागका दर्शन करनेसे भद्रासन हुआ करता है । इस आसन के अभ्यासससे सब प्रकारकी व्याधियोंकी शान्ति हुआ करती है ।।१९।।

मुक्तासन

वामगुल्फ पायुमूलमें रखकर उसके ऊपर दक्षिणगुल्फ स्थापित करके मस्तक और ग्रीवा सीधमें रखते हुए शरीरको समभावमें रखनेसे मुक्तासन हुआ करता है, यह आसन साधकगणको सिद्धिका देनेवाला है ।।१९।।

वज्रासनम्

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम् ।।२०।।

सिंहासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याऽधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ ।
चितिमूलौ भूमिसंस्थो कृत्वा च जानुनोपरि ।।२१।।
व्यक्तवक्त्रो जलन्ध्रञ्च नासाग्रमवलोकयेत् ।
सिंहासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।।२२।।

गोमुखासनम्

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ।।२३।।

वीरासनम्

एकपादमथैकस्मिन्विन्यसेदुरुसन्निधौ ।
इतरं तु तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम् ।।२४।।

वज्रासन

दोनों जंघाओंको वज्राकृति करके गुदाके उभय पार्श्वमें दोनों पैरोंको स्थापना करनेसे वज्रासन हुआ करता है । यह आसन योगियोंको सिद्धि प्रदान करने वाला है ।।२०।।

सिंहासन

गुल्फद्वयके नीचे उलटी रीतिसे रखकर ऊपरकी ओर निकलते हुए दोनों जानुओंको पृथिवी पर रखकर और जानुओंके ऊपर मुख व्यक्तरीति पर रखके जालन्धर बन्ध करते हुए नासिकाके अग्रभागको देखनेसे सिंहासन हुआ करता हैं । इस आसनके साधनसे सब प्रकारकी व्याधियोंकी शान्ति हुआ करती है । २१-२२।।

गोमुखासन

पृथ्वीके ऊपर दोनों चरणोंको स्थापन करके पीठके दोनो ओर निकालते हुए गोमुखकी नाई आसन करके समान होकर बैठनेसे गोमुखासन कहाता है ।।२३।।

धनुरासनम्

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मौ ।
कृत्वा धनुस्तुल्यविवर्तिताङ्गं निगद्यते वै धनुरासनं तत् ।।२५।।

मृतासनम्

उत्तानं शववद् भूमौ शयानं तु शवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ।।२६।।

गुप्तासनम्

जानूर्वोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ।।२७।।

मत्स्यासनम्

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनमरोगकृत् ।।२८।।

मत्स्येन्द्रासनम्

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः ।
नम्राङ्गं वामपादं च दक्षजानूपरि न्यसेत् ।।२९।।

वीरासन

एक ऊरुके पास एक पाद रखकर दूसरे पादको पीछेकी ओर रखनेसे वीरासन कहलाता है ।।२४।।

धुरासन

दोनों चरणोंको पृथिवी पर दण्डवत सीधा रखकर पीठकी ओरसे दोनों हाथ चलकर चरण युगलको धारण करके देहको धनुष आकार करनेसे उसे योगीगण धनुरासन कहते हैं ।।२५।।

मृतासन वा शवासन

मृत मनुष्यकी नाई पृथिवीपर शयन करनेसे मृतासन कहाता है, इसी का नाम शवासन है । यह आसन श्रमको दूर करने वाला और चित्त विश्रामका हेतु कहाता है ।।२६।।

गुप्तासन

जानुद्वयके मध्यमस्थलमें चरण युगलको गुप्त भावसे स्थापना करके उन चरणों पर गुह्यदेश रखनेसे गुप्तासन कहाता है ।।२७।।

तत्र याम्यं कूपरं च करे याम्ये च वक्त्रकम ।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिः पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते ।।३०।।

गोरक्षासनम्

जानूर्वोरन्तरे पादावुत्तानौ व्यक्तसंस्थितौ ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ।।३१।।
कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ।
गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम् ।।३२।।

पश्चिमोत्तानमुग्रासनं वा

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ
संन्यस्य भालं चितियुग्ममध्ये ।
यत्नेन पादौ विधृतौ कराभ्या-
मुत्तानपश्चासनमेतदाहुः ।।३३।।

उत्कटासनम्

अङ्गुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फौ च खे गतौ ।
तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ।।३४।।

मत्स्यासन

मुक्त पद्मासन करके कोनियों (कुहुनियों) को शिर पर लगा कर शयन करनेसे मत्स्यासन हुआ करता है । इस आसन द्वारा नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति हुआ करती है ।।२८।।

मत्स्येंद्रासन

जठर देश पीठकी नाई ऋजुभावसे स्थापना करके यत्नपूर्वक स्थिर रहकर वामपादको नम्र करके दक्षिण जानुके ऊपर रखकर और उस पर दक्षिण कोहनिकों को रखकर दक्षिण हाथ पर वदन रक्खे हुए भ्रूयुगलके बीचमें दर्शन करने से मत्स्येन्द्रासन हुआ करता है ।।२९-३०।।

गोरक्षासन

जानुद्वय और ऊरुके बीचमें पद युगलको व्यक्तभावसे उत्तान रूपसे स्थापन करके उत्तान करद्वय द्वारा शुल्क युगल को समावृत किया जाय ।।३१।। तदनन्तर कण्ठसंकोचनपूर्वक नासिकाके अग्रभाग दर्शन करनेसे गोरक्षासन हुआ करता है, यह आसन योगियों को सिद्धि देने वाला है ।।३२।।

सङ्कटासनम्

वामपादं चितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले ।
पाददण्डेन याम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ।
जानुयुग्मे हस्तयुग्ममेतत्सङ्कटमासनम् ।।३५

मयूरासनम्

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वम् ।
उच्चासने दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ।।३६।।
बहुकदशनभुक्तं भस्मकुर्यादशेषं जनयति जठराग्नि जारतेत्कालकूटम् ।
हरति सकलरोगानाशुगुल्मज्वरादीन् भवति विगतदोषमासनं श्रीमयूरम् ।।३७।।

कुक्कुटासनम्

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।
कूर्पराभ्यां समासीन उच्चस्थः कुक्कुटासनम् ।।३८।।

पश्चिमोत्तान व उग्रासन

पदयुगलको पृथिवी पर दण्डवत् सीधे रखकर करद्वय द्वारा यत्नपूर्वक चरणद्वयको धारण करके जंघाओंके बीच में शिर रखने से पश्चिमोत्तान आसन कहाता है। इस आसनमें वायुका उद्दीपन होता है इस कारण इसको उग्रासन भी कहते हैं ॥३३॥

उत्कटासन

पदाङ्गुष्ठद्वयद्वारा मृत्तिकास्पर्शपूर्वक गुल्फद्वयको निरालम्बभावसे रखकर उनपर गुह्यदेशको स्थापना करनेसे उत्कटासन कहलाता है ॥३४॥

सङ्कटासन

वामचरण और वामजानु पृथिवी पर स्थापना करके दक्षिण पाद द्वारा वामपाद वेष्टित करके जानुद्वयके ऊपर करद्वय स्थापन करनेसे संकटासन होता है ॥३५॥

मयूरासन

हथेलीसे पृथिवीका आश्रय करके कोणी द्वयके ऊपर नाभिका उभय

कूर्मासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याऽधो व्युत्क्रमेण समाहितौ।
ऋजु कायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥३९॥

उत्तानकूर्मासनम्

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम्।
शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम् ॥४०॥

मण्डूकासनम्

पृष्ठे पादयुगं त्वस्याऽङ्गुष्ठे द्वे तस्य संस्पृशेत्।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य मण्डूकासनमाचरेत् ॥४१॥

उत्तानमण्डूकासनम्

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः।
शेते भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डूकम् ॥४२॥

वृक्षासनम्

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय तु।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमो वृक्षासनमिदं विदुः॥४३॥

पार्श्व स्थापनपूर्व चरणद्वय पोक्षकी ओर उठाकर दण्डवत् होकर शून्यमें अवस्थित रहनेसे मयूर आसन हुआ करता है । इस मयूर आसनके अभ्याससे अधिक भोजन भी पचन हो जाता है, जठराग्नि की वृद्धि होती है, विषदोष का नाश हो सकता है और गुल्म ज्वर आदि नाना रोगोंकी शान्ति होती है ।।३६-३७।।

कुक्कुटासन

मुक्त पद्मासन होकर जानुद्वय और ऊरुद्वयके मध्यमें करद्वयको पृथिवी पर स्थापना करके मंचस्थ हो स्थिर रहनेसे कुक्कुटासन हुआ करता है ।।३८।।

कूर्मासन

वृषण के नीचे गुल्फद्वय विपरीत भावसे स्थापना करके मस्तक ग्रीवा और देहको ऋजुभाव से स्थित करके अवस्थित रहने से कूर्म्मासन हुआ करता है ।।३९।।

उत्तानकूर्मासन

कुक्कुटासनबन्धपूर्वक करद्वय द्वारा कन्धरधारण करके कूर्मवत् उत्तान होकर सोने से उत्तानकूर्मासन हुआ करता है ।।४०।।

गरुडासनम्

जङ्घोरुभ्यां धरां धृत्वा स्थिरकायो द्विजानुना ।
जानूपरि करद्वन्द्वं गरुडासनमुच्यते ।।४४।।

वृषासनम्

याम्यगुल्फे पायुमूलं वामभागे पदेतरम् ।
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ।।४५।।

शलभासनम्

अध्यास्य शेते द्विकरं च वक्षसा पृथ्वीमवष्टभ्य करद्वयेन ।
पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्द्ध्वं वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ।।४६।।

मकरासनम्

अधस्तु शेते हृदयं निधाय भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे देहाग्निकारं मकरासनं स्यात् ।।४७।।

उष्ट्रासनम्

अधस्तु शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायाऽपि धृतं कराभ्याम् ।
आकुञ्चयेज्जाठरचर्मगाढ मौष्ट्रं च पीठं मुनयो वदन्ति ।।४८।।

मण्डूकासन

पृष्ठदेशपर चरणतलद्वय ले जाकर पादयुगकलकी वृद्ध अङ्गुलियोंको परस्पर संलग्न करके जानुद्वयको सामने रखनेसे मण्डूकासन हुआ करता है ।।४१।।

उत्तानमण्डूकासन

मण्डूक आसनपर समासीन होकर कोनीद्वय द्वारा मस्तकको धारण करके मण्डूक भावसे उत्तान सोनेका नाम उत्तानमण्डूक आसन है ।।४२।।

वृक्षासन

दक्षिणचरण वाम उरुके मूलदेशमें स्थापन करके वृक्षवत् समानताके साथ पृथिवी पर अवस्थित रहनेसे वृक्षासन हुआ करता है ।।४३।।

गरुडासन

उरुद्वय और जंघाद्वय द्वारा भूतल आक्रमणपूर्वक जानुद्वय द्वारा देहको स्थिर भावसे रखकर जानुयुगलके ऊपर करद्वय स्थापना करनेसे गरुडासन होता है ।।४४।।

भुजङ्गासनम्

पादादिनाभिपर्यन्तमधोभूमौ भुवि न्यसेत् ।
कराभ्यां च धरां धृत्वा ऊर्ध्वशीर्षः फणीव हि ।।४९।।
देहाऽग्निर्वर्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
जागर्त्ति भुजगी देवी भुजगासनसाधनात् ।।५०।।

योगासनम्

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोरपि ।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम ।।५१।।
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधने ।।५२।।

वृषासन

गुह्य देश पर दक्षिण गुल्फका उपरिभाग स्थापन करके उसीकी वामदिक् पर वामचरण विपरित भावसे धारणपूर्वक पृथ्वी स्पर्श करनेसे वृषासन हुआ करता है ।।४५।।

शलभासन

अधोमुख होकर शयन करके वक्षस्थल पर करद्वय स्थापनपूर्वक करतलद्वय द्वारा पृथ्वी स्पर्श करके शून्यमें वितस्ति प्रमाण ऊपर पादद्वय रखने से शलभासन हुआ करता है ।।४६

मकरासन

अधोमुख होकर शयन करके पृथ्वी वक्षस्थल स्थापन करके पादद्वय विस्तार करते हुए कर युगल द्वारा मस्तकको धारण करनेसे मकरासन हुआ करता है, इस आसनके अभ्यास से शरीरस्थ तेजकी वृद्धि हुआ करती है ।।४७।।

अथमुद्राप्रकरणम्

मुद्रालक्षणं फलञ्च

प्राणायामस्तथा प्रत्याहारो धारणध्यानके ।
समाधिः साधनाङ्गानामेषां सिद्धौ हि या हिता ।।१।।
साहाय्यमादधातीह सुकौशलभरा क्रिया ।
मुद्रा सा प्रोच्यते धीरैर्योगिमिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।२।।
सहायिका भवेन्मुद्रा सर्वाङ्गानां हि काचन ।
काचिच्च तत्तदङ्गानामुपकारं करोति वै ।।३।।

मुद्राभेदाः

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम् ।
मूलबन्धो महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ।।४।।
विपरीतकरी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी ।

उष्ट्रासन

अधोमुख होकर शयन करते हुए चरण युगलको उलटकर पीठकी ओर रखकर करद्वय द्वारा चरण युगलको उलटकर पीठकी ओर रखकर करद्वय द्वारा चरणों को धारण करके जठरको दृढरूपसे सङ्कोचित करनेसे उष्ट्रासन हुआ करता है ।।४८।।

भुजङ्गासन

नाभिसे लेकर पादके वृद्धाङ्गुष्ठ पर्यन्त निम्नभाग पृथिवी पर स्थापन करते हुए करतल द्वारा पृथिवी अवलम्बन पूर्व भुजङ्गकी भाँति शिरोदेश ऊपरको उठानेसे भुजङ्गासन हुआ करता है, इस आसन द्वारा शरीरस्थ अनल्की दिन-दिन वृद्धि और नाना रोगोंकी शान्ति हुआ करती है और कुण्डलिनी शक्ति भी जागृत होती है ।।४९-५०।।

योगासन

चरणद्वय उत्तान (चित्त) करके जानुयुगल ऊपर स्थापना करते हुए करद्वयको उत्तान भावसे आसन पर पूरक द्वारा अनिल आकर्षणपूर्वक कुम्भक

ताडागी चैव माण्डुकी शाम्भवी पञ्चधारणा ।।५।।
आश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी ।
पञ्चविंशतिमुद्राः स्युः सिद्धिता योगिनां सदा ।।६।।

महामुद्रा

पायुमूले वामगुल्फं सम्पीड्य च यथाक्रमम् ।
दक्षपादं प्रसार्याऽथ करयोरङ्गुली दधत् ।।७।।
कण्ठसंकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत् ।
ततः शनैः शनैरेवं रचयेत्तं न वेगतः ।।८।।
अनुसृत्य गुरोर्वाक्यं जानुस्थापितमस्तकः ।
वामेन दक्षिणेनाऽपि कृत्वोभाभ्यां पुनस्तथा ।।९।।
नाशयेत्सर्वरोगांश्च महामुद्रा सुसाधनात् ।
सिद्धिदा योगमार्गस्य वदन्तीति पुराविदः ।।१०।।

करते हुए नासाग्रभागको देखनेसे योगासन हुआ करता है, योगिगणके लिये यह आसन सदा उपयोगी है ॥५१-५२॥

मुद्रा प्रकरण

मुद्राका लक्षण और फल

जिन क्रियाओंके द्वारा प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन साधन अङ्गोंकी सिद्धिमें सहायता प्राप्त होती है, ऐसी सुकौशलपूर्ण क्रिया को मुद्रा कहते हैं। कोई मुद्रा इनके सब अङ्गोकी सहायता करती है, कोई कोई इनमेंसे विशेष अङ्गोकी सहायता करती है ॥१-३॥

मुद्रा के भेद

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानबन्धमुद्रा, जालन्धरबन्धमुद्रा, मूलबन्धमुद्रा, महाबन्धमुद्रा, महाबेधमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रलीमुद्रा, शक्तिचालिनीमुद्रा, ताडागीमुद्रा, माण्डूकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, पञ्चधारणामुद्रा, अश्विनीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, काकीमुद्रा,

---

नभोमुद्रा

यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा।
ऊर्दूध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा।
नभोमुद्रा भवत्येषा योगिनां रोगनाशिनी ॥११॥

उड्डीयानबन्धमुद्रा

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्द्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरो ॥१२॥
अन्यस्माद्वन्धनादेतदुड्डीयानं विशिष्यते।
उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥१३॥

जालन्धरबन्धमुद्रा

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।
जालन्धरे कृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम् ॥१४॥
जालन्धरमहामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी।

मातङ्गीमुद्रा और भुजङ्गिनीमुद्रा, ये पच्चीस मुद्राएं कहाती हैं, इनके साधनसे योगिगणको योग-सिद्धिकी प्राप्ति हुआ करती है ।।४-६।।

महामुद्रा

वामगुल्फको पायुमूलमें लगाकर और दक्षिणपाद दण्डवत् फैलाकर दोनों हाथोंमें पादाङ्गली धारण करके कण्ठ संकोच करते हुए भ्रूमध्य दर्शन करके पुनः स्थिरभाव धारण करके कुम्भक किये हुए वायुको शनैः शनैः रेचन करे, वेग से रेचन न करे, तदनन्तर इसका विपरित करे अर्थात् दक्षिणगुल्फ को गुह्य द्वारमें स्थापन करके वाम पाद प्रसारण द्वारा वैसी ही क्रिया करे, पुनः उभय पादोंसे वैसी ही क्रिया करे, तो महामुद्राका साधन हुआ करता है । इस मुद्राके साधनसे नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है और योगकी सिद्धि होती है ।।७-१०।।

नभोमुद्रा

योगी सर्वदा सर्व कार्योंमें स्थिर रहकर उर्द्ध्वजिह्व होकर कुम्भक द्वारा वायु रोध करे तो नभोमुद्राका साधन हुआ करता है, इस मुद्राके साधनसे योगिगणके सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति हुआ करती है ।।११।।

सिद्धो जालन्धरो बन्धो योगिनां सिद्धदायकः ।
षण्मासमभ्यसद्यो हि स सिद्धा नाऽत्र संशयः ।।१५।।

मूलबन्धमुद्रा

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयत्ततः ।
नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डे सम्पीड्य यत्नतः सुधीः ।।१६।।
मेढ्रं दक्षिणगुल्फं तु दृढबन्धं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते ।।१७।।
संसारसागरं तर्त्तुमभिलष्यति यः पुमान् ।
प्रच्छन्नो निर्जने भूत्वा मुद्रामेतां समभ्यसेत् ।।१८।।
अभ्यासाद्बन्धनस्याऽप्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजिताऽलसः ।।१९।।

महाबन्धमुद्रा

वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलं निरोधयेत् ।
दक्षपादेन तद्गुल्फं सम्पीड्य यत्नतः सुधीः ।।२०।।

उड्डीयानबन्ध मुद्रा

उदरको पश्चिमत्तान युक्त करके नाभिको आकञ्चन करनेसे उड्डीयानबन्धमुद्रा हुआ करती है; यह मुद्रा मृत्युरूप मातङ्गके लिये अंसहरूप है। जितनी मुद्राएँ कही गई हैं उनमें से उड्डीयानबन्ध श्रेष्ठ है, इसके साधन से बिना प्रयास मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है ॥१२-१३॥

जालन्धरबन्ध मुद्रा

कण्ठ देश संकोचन पूर्वक हृदय पर चिबुक लगानेसे ही जालन्धरबन्ध मुद्रा हुआ करती है, इसके द्वारा और सोलह प्रकारके आधार बन्धोंमें सहायता मिलती है, यह मृत्यु को भी जीत लेती है, सिद्धजालन्धरबन्ध योगिगण को सिद्धि प्राप्त कराता है, जो षट्मास तक इसका साधन करते हैं उनको सिद्धि लाभ में कुछ भी संशय नहीं रहता ॥१४-१५॥

मूलबन्ध मुद्रा

गुह्य प्रदेश में वामगुल्फ रखकर योनि आकुञ्चन पूर्वक मेरुदण्डमें नाभिग्रन्थिको दबाकर, पुनः लिङ्गमूल पर दक्षिण गुल्फ दृढ रूपसे संबद्ध करने

शनैः सञ्चालयेत्पार्ष्णि योनिमाकुञ्चयेच्छनैः।
जालन्धरे धृतप्राणो महाबन्धो निगद्यते ॥२१॥
महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशकः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववाञ्छितम् ॥२२॥

महावेधमुद्रा

रूपयौवनलावण्यं नारीणां पुरुषं विना।
मूलबन्धमहाबन्धौ महावेधं विना तथा ॥२३॥
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकं चरेत्।
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥२४॥
मलबन्धमहाबन्धौ महावेधसमन्वितौ।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः ॥२५॥
न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते।
अनुष्ठेयः प्रयत्नेन वेद्योऽयं योगिपुङ्गवैः ॥२६॥

से मूलबन्धका साधन हुआ करता है; यह जरानाश करने वाला है। जो मनुष्य संसाररूप सागरको पार होनेकी इच्छा करता है वह अवश्य इस मुद्राका साधन करे, इसके द्वारा वायु की सिद्धि होती है इस कारण साधकोंको उचित है कि आलस त्यागपूर्वक मौनी हो यत्नसे इस मुद्रा का साधन करे ॥१६-१९॥

महाबन्ध मुद्रा

वामगुल्फ द्वारा पायु मूल निरोध करके दक्षिण पाद द्वारा यत्नपूर्वक वामगुल्फ को दबाकर शनैः शनैः गुह्य देश परिचालित करके आकुञ्चन करते हुए जालन्धरबन्ध द्वारा प्राण वायुको धारण करनेसे महाबन्ध मुद्रा हुआ करती है। महाबन्धमुद्रा सब मुद्राओंसे श्रेष्ठ मुद्रा कही जाती है और जरा मृत्यु नाश करने वाली एवं मनोरथ सिद्ध करने वाली है ॥२०-२२॥

महावेध मुद्रा

पुरुषके बिना जैसे स्त्रीके रूप यौवन और लावण्य विफल होते हैं वैसे ही महावेधके बिना मूलबन्ध और महाबन्ध मुद्रा निष्फल होती है। पहिले महाबन्ध मुद्रा अनुष्ठानपूर्वक उड्डीयान बन्ध करते हुए कुम्भक द्वारा वायु निरोध

खेचरीमुद्रा

जिह्वाऽधो नाडीं संछिन्नां रचनां चालयेत्सदा।
दोहयेन्नवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥२७॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत्।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तदा भवति खेचरी ॥२८॥
रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥२९॥
न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवाऽऽलस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते ॥३०॥
नाऽग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो संदशेन्न भुजङ्गमः ॥३१॥
लावण्यं जायते गात्रे समाधिश्च भवेद्ध्रुवम्।
कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात् ॥३२॥

करनेसे महावेध मुद्राका साधन हुआ करता है। महावेध योगियोंको सिद्धि देने वाली है। जो साधक प्रतिदिन महावेध सहित महाबन्ध और मूलबन्धका आचरण करता है वही योगी श्रेष्ठ कहलाता है, उसको न तो मृत्यु और न जरा आक्रमण कर सकती है। श्रेष्ठ योगिगण यत्नपूर्वक इसका आचरण करें ॥२३-२६॥

खेचरी मुद्रा

जिह्वा के नीचे जो नाडी है उसको छेदन करके निरन्तर रसना को चलित करे और नवनीत द्वारा जिह्वा का दोहन और लोहमय यन्त्र द्वारा आकर्षण क्रिया करे। प्रतिदिन इस प्रकार करने से जिह्वा दीर्घता को प्राप्त होकर क्रमशः भीतर की ओर जाकर भ्रूद्वय के मध्यस्थल को स्पर्श करेगी। तालु के मध्यस्थ कपाल कुहर नामक गह्वर है, जिह्वा को उसी गह्वर में विपरीत भाव से पहुँचा कर भ्रुयुगल के मध्य में अवलोकन करने से खेचरी मुद्रा हुआ करती है। जो मुनष्य इस खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हैं। मूर्च्छा, क्षुधा और तृष्णा उनको क्लेश प्रदान नहीं कर सकती, आलस्य उनके शरीर में नहीं रह सकता, रोग और मृत्यु

नानारससमुद्भूतमानन्दं च दिने दिने।
आदौ लवणक्षारञ्च ततस्तिक्तकषायकम् ॥३३॥
नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्रमधूनि च।
द्राक्षारसं च पीयूष जायते रसनोदकम् ॥३४॥
मुद्रामिमां साधयितुं जिह्वानियमन पुरः।
प्रधानं तद्धि भवित जिह्वायाश्छेदनं विना ॥३५॥
जिह्वाचालनतालव्यक्रिययाऽपि च सिध्यति।
प्रच्छन्नेयं क्रिया बोध्या तन्त्रशास्त्रेषु नित्यशः ॥३६॥
चतुर्विधस्य योगस्य विज्ञाता योगिपुङ्गवः।
क्रियामुपादिशत्येतां योगसिद्धिकरीं पराम् ॥३७॥

विपरीतकरणीमुद्रा

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः ॥३८॥
निपुणं चन्द्रनाड्या वै पीयते यदि सा सुधा।

भय से दूर होकर वे देवदेहतुल्य देह को प्राप्त कर लेते हैं। जो खेचरी मुद्रा का साधन करते हैं न तो अग्नि उनको दग्ध कर सकती है, न वायु उनको शुष्क कर सकता है, न जल उनके देह को गला सकता है और न सर्प उनको दंशन कर सकता है। खेचरी मुद्रासे देह अपूर्व लावण्ययुक्त हो जाता है और इसकी सिद्धि से समाधि की सिद्धि हुआ करती है, कपाल और वक्त्र के सम्मिलन से रसना में अद्‌भुत रसों की उत्पत्ति हुआ करती है। जो इस मुद्रा का साधन करते हैं उनकी रसना में दिन दिन अद्‌भुत रसों की उत्पत्ति और उनके चित्त में नव नव आनन्द भावों का उद्‌भव हुआ करता है। उनकी जिह्वा में पहिले लवणरस, पुनः क्षाररस, पुनः तिक्तरस, तदनन्दतर काषायरस पश्चात् नवनीत, घृत, क्षीर, दधि, तक्र, मधु, द्राक्षा, अमृत आदि विविधरसों का आविर्भाव हुआ करता है। खेचरी मुद्रा के साधन के लिये जिह्वा को नियमित करना प्रथम और सर्व प्रधान कार्य है, सो आवश्यक होने पर बिना छेदन के भी हो सकता है। वह कार्य जिह्वा चालन रूप तालव्य क्रिया से भी हो सकता है। वह क्रिया तन्त्रों में अतिगुप्त है, केवल योगचतुष्टा के ज्ञाता योगिराज ही उस क्रिया का उपदेश दे सकते हैं ॥२७-३७॥

कर्हिचिन्न हि तस्याऽस्ति भीतिर्मृत्योर्हि योगिनः ॥३९॥
ऊर्द्ध्वञ्च योजयेत्सूर्यं चन्द्रञ्चाऽधः समानयेत्।
विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥४०॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।
उर्द्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥४१॥
मुद्रां च साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत्।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति ॥४२॥

योनिमुद्रा

सिद्धासनं समासाद्य कर्णाक्षिनासिकामुखम्।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्याऽनामिकाभिश्च साधयेत् ॥४३॥
काक्या प्राणं समाकृष्य अपाने योजयेत्ततः।
षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुँ हस मनुना सुधीः ॥४४॥
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिता या भुजङ्गिनी।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य शिरोऽम्बुजे ॥४५॥

विपरीतकरणी मुद्रा

सूर्यनाडी नाभिमूल में और चन्द्रनाडी तालुमूल में विद्यमान है, सहस्त्रदल कमल से जो पीयूषधारा प्रवाहित हुआ करती है सूर्य नाडी उसको ग्रहण कर जाती है, इस कारण से ही जीवगण मृत्युग्रास में पतित हुआ करते हैं, यदि कार्यसुकौशल से चन्द्रनाडी द्वारा वह अमृत पान किया जाय तो कदापि मृत्यु आक्रमण नहीं कर सकती। इस कारण से योगसाधन द्वारा सूर्य नाडी को ऊर्द्ध्व में और चन्द्रनाडी को अधोभाग में ले आना योगी का कर्तव्य है, इस विपरीतकरणी आचरण से नाडियों को वैसी अवस्था में ला सकते हैं, मस्तक को पृथ्वी पर स्थापन करके कर द्वय का आधार करते हुए पादयुगल को ऊर्द्ध्व दिशा में उठाकर कुम्भक द्वारा वायु निरोध करने से विपरीतकरणी मुद्रा हुआ करती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस मुद्राका साधन किया करते हैं, जरा और मृत्यु उनके निकट पराजय को प्राप्त होते हैं और वे सर्वत्र सिद्ध नाम से प्रसिद्ध होते हैं, प्रलय काल में भी वे योगी भय के कारण अवसन्नता को नहीं प्राप्त होते ॥३८-४२॥

स्वयं शक्तिमयो भूत्वा शिवेन योजयेत्स्वकम्।
नानासुखं विहारं च चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥४६॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत्।
आनन्दमानसो भूत्वा अहं ब्रह्मेति चिन्तयेत् ॥४७॥
योनिमुद्रा परा गोप्य देवानामपि दुर्लभा।
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥४८॥
ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापो गुरुतल्पगः।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥४९॥
तानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात्।
तस्मादभ्यसनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति ॥५०॥

वज्रोलीमुद्रा

स्वेच्छया वर्त्तमानोऽपि योगोक्तैर्नियमौर्विना।
वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनम् ॥५१॥

योनि मुद्रा

सिद्धासन में उपवेशन करके कर्णद्वय वृद्ध अङ्गुष्ठद्वय द्वारा नेत्रयुगल तर्ज्जनीद्वय द्वारा, नासिकाद्वय मध्यमाद्वय द्वारा और मुख अनामिका द्वय द्वारा निरूद्ध करके काफी मुद्रा द्वारा प्राण वायु आकर्षण पूर्वक अपान वायुके साथ मिलाते हुए शरीरस्थ षट्चक्रों में मन लेजाकर 'हुँ' और 'हंस' इन दोनों मन्त्रों के जप द्वारा देवी कुलकुण्डलिनी को जगाते हुए जीवात्मा के साथ मिलाकर उनको सहस्रदल कमल में ले जाकर जब साधक ऐसा ध्यान करे कि मैं शक्तिमय होकर शिव के साथ मिलित हूँ, परमानन्दरूप विहार कर रहा हूँ और शिवशक्तिसंयोग रूप मैं ही आनन्दमय ब्रह्म हूँ तभी योनि मुद्रका साधन होता है। यह मुद्रा परम गोपनीय और देवताओं को भी दुर्ल्लभ है, इसके साधारण साधन से ही साधक को सिद्धि की प्राप्ति हुआ करती है और इसके द्वारा अनायास से समाधि लाभ हुआ करता है। जो मनुष्य योनिमुद्रा का साधन करते हैं उनको ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, गुरुदारागमन आदि महापाप भी स्पर्श नहीं कर सकते, पृथिवी पर जो बड़े-बड़े पातक और महापातक हैं वे भी इस मुद्रा के आचरण से

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित्।
क्षारं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी ॥५२॥
मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत्।
पुरुषोऽप्यथवा नारी वज्रोलोसिद्धिमाप्नुयात् ॥५३
यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्र कन्दरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसञ्चारकारणात् ॥५४॥
नारीभगे पतेद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥५५॥
एवं संरक्षयेद्बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित्।
मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ॥५६॥
सुगन्धो योगिनी देहे जायते बिन्दुधारणात्।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ॥५७॥
चित्ताऽऽयत्तं नृणां शुक्रं शुक्राऽऽयत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुकं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥५८॥

नष्ट हो सकते हैं, जिनको मुक्ति लाभ करने की इच्छा होती है वे ही इस मुद्रा का साधन किया करते हैं ॥४३-५०॥

वज्रोली मुद्रा

जो योगी योग के अन्य नियमों को न मानकर अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करने पर भी वज्रोली क्रिया के साधन को जानते हैं वे योगिगण सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इसके साधन में दो विशेष फलों की प्राप्ति होती है, प्रथम तो क्षीर भोजन का फल और द्वितीय नारी का वशीभूत होना। स्त्री सङ्ग करते समय योगक्रिया द्वारा वीर्य को पुरुष अथवा स्त्री के यत्नपूर्व इन्द्रिय आकुञ्चन द्वारा चढ़ा लेने से वज्रोली मुद्रा का साधन हुआ करता है। एक चांदी की बनी हुई नाल शनैः शनै लिङ्ग द्वार में प्रवेश करके पुनः उस नाल में फूंक देकर वायु संचार का अभ्यास करना उचित है। तत्पश्चात् नारी योनि में पतित बिन्दु को आकर्षण कर लेवे अथवा अपने चलित बिन्दु को बीच में ही रक्षा करके खींच लेवे। तब इस प्रकार से बिन्दु की रक्षा करने से मृत्यु का जय और योग की प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि बिन्दुपात ही मृत्यु की प्राप्ति और बिन्दु के धारण से

ऋतुमत्या रजोऽप्येवं बीजं बिन्दुं च रक्षयेत्।
मेढ्रेणाऽकर्षयेदूर्ध्वं सम्यगभ्यासयोगवित् ॥५९॥
सहजोलिश्चामरोलिर्वज्राल्या भेद एवते।
जले सुभस्म निक्षिप्य दग्धगोमयसम्भवम् ॥६०॥
वज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसोः स्वाङ्गलेपनम्।
आसीनयोः सुखेनैव मुक्तव्यापारयोः क्षणात् ॥६१॥
सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभिः सदा।
अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिदः ॥६२॥
अयं यागः पुण्यवतां धीराणां तत्त्वदर्शिनाम्।
निर्मत्सराणां सिध्येत न तु मात्सर्यशालिनाम् ॥६३॥
पित्तोल्वणत्वात्प्रथमाऽम्बुधारां निषेव्यते शीतलमध्यधारा।
विहाय निःसारतयाऽन्त्यधारां कापालिके खण्डमतेऽरोली ॥६४॥
अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिने दिने।
वज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगमरोलीति कथ्यते ॥६५॥

ही जीवन की रक्षा हुआ करती है। जो इस मुद्रा के साधन से बिन्दु की रक्षा किया करते हैं उनके देह में सुन्दर सुगन्धि हो जाती है और जबतक वह योगी बिन्दु को धारण किये रहता है तब तक कदापि उसको मृत्यु भय नहीं होता। यह निश्चय की हुई बात है कि जब मन चलायमान होता है तभी मनुष्य का वीर्य चलायमान होता है अर्थात् वीर्य से मनका एक ही सम्बन्ध है और शुक्र स्थिर रहने से जीवन भी स्थिर रहता है इस कारण यत्नपूर्वक शुक्र की रक्षा करना उचित है। जो योगी ऋतुमती स्त्री के रज और अपने वीर्य को इस आकर्षण क्रिया से खेंचकर धारण कर सकता है वही योग को जानने वाला है इसमें संदेह नहीं। सहजोली और अमरोली ये दोनों क्रियाएँ वज्रोली के ही अन्तर्गत हैं, दग्धगोमय से भस्म बनाकर उसे जल के संयोग से कार्यकारी करके पुनः वज्रोली क्रिया साधन के अर्थ मैथुन करके स्त्री पुरुष आनन्दपूर्वक आसनस्थित होकर उत्सव रहित हो अपने अङ्ग पर उसको धारण करें। इस प्रकार की अन्तर क्रिया को सहजोली कहते हैं। योगिगण को श्रद्धायुक्त होकर इसका आचरण करना उचित है, यह साधकों के लिये शुभकारी और भोगयुक्त होने पर भी मुक्ति को देने वाली है। यह

अभ्यासान्निःसृतां चान्द्रीं विभूत्या सह मिश्रयेत्।
धारयेदुत्तमाङ्गेषु दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥६६॥
पुंसो बिन्दुं समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात्।
यदि नारी रजो रक्षेद्वज्रोल्या साऽपि योगिनी ॥६७॥
तस्याः किञ्चिद्रजो नाशं न गच्छति न संशयः।
तस्या शरीरे नादश्च बिन्दुतामेव गच्छति ॥६८॥
स बिन्दुस्तद्रजश्चैव एकीभूय स्वदेहगौ।
वज्रोल्यभ्यासयोगेन सर्वसिद्धिं प्रयच्छतः ॥६९॥
रक्षेदाकुञ्चनादूर्ध्वं या रजः सा हि योगिनी।
अतीताऽनागतज्ञानं खेचरी च भवेद्ध्रुवम् ॥७०॥
देहसिद्धिं च लभते वज्रोल्यभ्यासयोगतः।
अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः ॥७१॥
वज्रोलीसाधनं पुंसस्तस्या वा साधनं स्त्रियाः।
सहजोली चामरोली चाऽत्रैवान्तर्भवेद्धि वै ॥७२॥

साधन पुण्यवान्को, धैर्यवान्को, तत्त्वदर्शीको और मात्सर्य रहित को सिद्ध हुआ करता है और मात्सर्य युक्त पुरुष को यह कदापि फलदायी नहीं होता। शिवाम्बु निर्गत होते समय पित्त के कारण उत्कट और उष्ण प्रथम धारा को त्याग करके और असार अन्त धारा को भी ग्रहण न करके केवल मध्य की शीतल और पित्तादि दोषवर्ज्जित धारा का सदा सेवन करने से अमरोली नामक इस मुद्रा की अन्तर क्रिया का साधन हुआ करता है, कापालिक मतानुयायि इसका ऐसा नाम दिया गया है। जो पुरुष अमर वारुणी को नासिक द्वारा ग्रहण करके प्रतिदिन पान करते हुए वज्रोली मुद्रा का अभ्यास किया करते हैं तभी उस क्रिया का नाम अमरोली क्रिया कहा जाता है। इस अमरोली साधन से प्राप्त हुई चन्द्रसुधा पूर्व कथित भस्म में मिलाकर यदि मस्तक पर धारण की जाय तो दिव्य दृष्टि की प्राप्ति हुआ करती है। जो कामिनी अभ्यास योग द्वारा पुरुष बिन्दु को आकर्षण करके वज्रोली मुद्रा द्वारा अपने रज की रक्षा कर सकती है शास्त्र में उसी का नाम योगिनी कहा है। उस योगिनी का शरीरस्थ रज कुछ भी नष्ट नहीं होता और उसके अङ्ग में नाद और बिन्दु की प्राप्ति हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं।

गोपितेयं क्रिया सर्वा तन्त्रेषूपनिषत्सु वै।
असौ च दुष्करा यादृक् क्षुरधाराऽवलेहनम् ॥७३॥
अन्तर्भूताः क्रियाश्चाऽन्या वद्या या योगवित्तमैः।
योगमार्गान्विजानद्भिरुपदेश्या भवन्ति ताः ॥७४॥
इयं हि मन्त्रयोगस्य लतासाधनमित्युत।
सम्बन्धवत्यौ विज्ञेये विज्ञानं चाऽपि कथ्यते ॥७५॥
वैषम्याऽवस्थया यद्वत्पृथग्भावं प्रपद्य वै।
पुरुषात्प्रकृतिः सर्गं विदधाति निरन्तरम् ॥७६॥
सा तस्मिन्पुरुषे साम्यामवस्थां प्राप्य लीयते।
ततश्च परमानन्दमद्वैतमुपलभ्यते ॥७७॥
ऊर्ध्वरेतस्त्वसम्प्राप्तिः कुशलैर्योगसाधनैः।
लक्ष्यमस्या विनिर्दिष्टं प्रथमं परमर्षिभिः ॥७८॥
साधनं सात्त्विकधृतेश्चरमं फलमुच्यते।
सङ्गत्या वीर्यरजसोर्मनसो विजयक्रिया ॥७९॥

वज्रोली मुद्रा के साधन के अभ्यास द्वारा जब पुरुष बिन्दु और स्त्रीरज इन दोनों की स्थिति अपने शरीर में हो जाती है तब सब प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति हुआ करती है और जब स्त्री आकुञ्चन क्रिया द्वारा रज की रक्षा कर सकती है तभी वह योगिनी भूत भविष्यत् ज्ञानवती हो जाती है और आकाश मार्ग में भ्रमण करने की शक्ति भी उसमें हो जाती है इसमें कोई संदेह नहीं । वज्रोली मुद्रा के अभ्यास द्वारा योगी को शरीर की पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है, इस पुण्यकारक योग में भोग का सम्बन्ध रहने पर भी यह मुक्ति को देने वाला है । पुरुष का वज्रोली अभ्यास अथवा स्त्री का वज्रोली अभ्यास, सहजोली क्रिया अथवा अमरोली क्रिया, ये सब इसी मुद्रा के अन्तर्गत हैं, यह मुद्रा उपनिषत् और तन्त्रों में अति गुप्त है और इतनी कठिन है कि क्षुर धारा के अवलेहन के सामान है और भी अनेक क्रियाएं इसके अन्तर्गत हैं जिनका योग चतुष्टय साधनज्ञाता योगी ही उपदेश दे सकते हैं । मन्त्रयोग-अन्तर्गत लतासाधन से इसका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । इस मुद्रा का विज्ञान यह है कि वैषम्यावस्था होने पर प्रकृति पुरुष से अलग रहकर सृष्टि प्रसार करती है, परन्तु साम्यावस्था में प्रकृति पुरुष में मिल जाने से परमानन्द अद्वैत

परमः पुरुशार्थोऽयं प्राप्त्युपायस्तु कथ्यते ।
योगिमुख्यगुरुणां हि साहाय्यादेव केवलम् ।।८०।।
जितेन्द्रिया वीतरागा अस्याः स्युरधिकारिणः ।।८१।

शक्तिचालिनी मुद्रा

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता ।
शयिता भुजगाऽऽकारा सार्द्धत्रिवलयाऽन्विता ।।८२।।
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा ।
ज्ञानं न जायते तावत्कोटियोगविधेरपि ।।८३।।
उद्घाटयेत्कपाटं च यथा कुञ्चिकया हठात् ।।
कुण्डलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत् ।।८४।।
नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिः स्थितः ।
गोपनीयगृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ।।८५।।
वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम् ।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ।

पद की प्राप्ति होती है । अस्तु, चाहे जैसे हो सुकौशलपूर्ण योग साधन द्वारा ऊधर्वरितस्त्व होना इसका प्रथम लक्ष्य है, सात्त्विक धृतिका सम्पादन करना इसका चरम फल है और वीर्यमें रज के लय के द्वारा मनोजय में समर्थ होना इसका परम पुरुषार्थ है । योगिराज गुरु की बिना सहायता से यह मुद्रा कभी नहीं प्राप्त होती और जितेन्द्रिय और वीतराग साधक ही इस साधन का अधिकारी होता है ॥५१-८१॥

शक्तिचालिनी

परम देवता कुलकुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन फेर लगाकर भुजङ्गाकृति हो मूलाधारपद्म में स्थित है । वह शक्ति जब तक निद्रिता रहती है तबतक कोटि कोटि योगक्रिया करने से भी जीव को ज्ञान की प्राप्ति नहीं सकती और वह पशुवत् अज्ञानी ही रहता है । जिस प्रकार कुञ्चिका द्वारा द्वार समुद्घाटित हुआ करते हैं उसी प्रकार कुलकुण्डलिनी शक्ति के जागने से ब्रह्मद्वार अपने आप ही खुल जाता है और इस प्रकार से जीव को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । वस्त्र द्वारा नाभिदेश वेष्टन पूर्वक गोपनीय गृह में आसन स्थित होकर शक्तिचालिनी मुद्रा

एवमम्बरयोगं च कटिसूत्रेण कल्पयेत् ॥८६॥
भस्मना गात्रमालिप्य सिद्धासनमथाऽऽचरेत् ।
नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥८७॥
तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया ।
यावद्वायुः सुषुम्नायां न प्रकाशमवाप्नुयात् ॥८८॥
तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी ।
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा उर्द्ध्वाङ्ग प्रपद्यते ॥८९॥
योनिमुद्रा न सिध्येद्वै शक्तिचालनमन्तरा ।
आदौ चालनमभ्यस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥९०॥
इति ते कथितं सौम्य कपालशक्तिचालनम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन प्रत्यहं तत्समभ्यसेत् ॥९१॥
मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी ।
तस्मादभ्यसनं कार्यं योगिभिः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥९२॥
नित्यं यः कुरुते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता ।

का अभ्यास करना उचित है, परन्तु नग्नावस्था में रहकर खुले हुए स्थान में कदापि यह साधन न किया जाय। वितस्ति परिमित और चार अङ्गली विस्तृत, सुकोमल, धवल और सूक्ष्म वस्त्र द्वारा नाभिको वेष्टन करके उस वस्त्र को कटिसूत्र द्वारा सम्बद्ध किया जाय तत्पश्चात् भस्म द्वारा समस्त शरीर लेपन पूर्वक सिद्धासन पर बैठ कर प्राणवायु को नासिका द्वारा आकर्षण करके बलपूर्वक अपान वायु के साथ संयुक्त किया जाय और जब तक वायु सुषुम्ना नाडी के भीतर जाकर प्रकाशित न हो तबतक अश्विनी मुद्रा द्वारा शनैः शनैः गुह्य देश को आकुञ्चन करना उचित है। इस प्रकार से निःश्वास रोध कर कुम्भक द्वारा वायुनिरोध करने से भुजङ्गाकारा कुण्डलिनी शक्ति जागृता होकर ऊपर की ओर चलने लगती है और पीछे सहस्त्रदल कमल में पहुंचकर शिवसंयोगिनी हो जाती है। शक्तिचालिनी मुद्रा के बिना योनिमुद्रा में पूर्ण सिद्धि नहीं होती इस कारण आगे इस मुद्रा का अभ्यास करके तत्पश्चात् योनिमुद्रा अभ्यास करने योग्य है। यही शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन है, अति यत्न पूर्वक इसको गोपन रख के प्रतिदिन इसका अभ्यास करना उचित है। यह मुद्रा बहुत ही गोपनीय है, इसके

तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥९३॥

ताडागीमुद्रा

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा चैव तडागवत्।
ताडागी सा परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥९४॥

माण्डूकीमुद्रा

मुखं सम्मुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत्।
शनैर्ग्रसेत्तदमृतं माण्डूकीं मुद्रिकां विदुः ॥९५॥
वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाकी माण्डूकीं यः समाचरेत् ॥९६॥

शाम्भवीमुद्रा

नेत्रान्तरं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत्।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गेपिता ॥९७॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
इयं तु शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवाधूरिव ॥९८॥

द्वारा जरा और मृत्यु के हाथ से जीव बच सकता है इस कारण सिद्धि की इच्छा करने वाले योगिगण इसका अवश्य अभ्यास करें। जो योगी प्रतिदिन इस मुद्रा का अभ्यास करते हैं अष्टसिद्धियां उनके करतलगत हो जाती हैं और उनको विग्रहसिद्धि की प्राप्ति होकर उनके सब रोगों की शान्ति हो जाती है ॥८२-९३॥

ताडागी मुद्रा

पश्चिमोत्तान आसन पर बैठकर उदर को तडागाकृति करके कुम्भक करने से ताडागी मुद्रा हुआ करती है, यह एक प्रधान मुद्रा है इसके द्वारा जरा और मृत्यु जय किया जा सकता है ॥९४॥

माण्डुकी मुद्रा

मुख विवर मुद्रित करके उद्धर्वकी और तालु विवरकी और जिह्वा मूल को चलाकर जिह्वा द्वारा धीरे-धीरे सहस्रदल कमल विनिर्गत सुधाधारा पान करने से माण्डूकी मुद्रा हुआ करती है, इसके साधन से शरीर में पूर्ण बल का संचार होता है, केशपक्वता दूर होती है और यौवन की प्राप्ति हो जाती है ॥९५-९६।

स एव आदिनाथश्च स च नारायण: स्वयम्।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शाम्भवीम् ॥९९॥
सत्यं सत्यं पुन: सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरि।
शाम्भवीं यो विजायनीयात्स च ब्रह्म न चाऽन्यथा ॥१००॥

पञ्चधारणामुद्रा

कथिता शाम्भवी मुद्रा शृणुष्व पञ्चधारणाम्।
धारणां वै समासाद्य किन्न सिध्यति भूतले ॥१०१॥
अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनाऽऽगमम्।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चाऽन्यथा ॥१०२॥

पार्थिवीधारणामुद्रा

यत्तत्त्वं हरितालवर्णसदृशं भौमं लकाराऽन्वितं
वेदास्त्रं कमलासनेन सहितं कृत्वा हृदि स्थायि तत्।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजये कुर्यादधोधारणा ॥१०३॥

शाम्भवी मुद्रा

भ्रूद्वय के मध्यस्थल में दृष्टि रखकर एकान्त मन हो परमात्मा के रूप का दर्शन करने से शाम्भवी मुद्रा हुआ करती हैं, यह मुद्रा सर्व तन्त्रों में गोपनीय कही गई है। क्या वेद, क्या पुराण सब शास्त्र ही गणिका की नाईं प्रकाशित हैं, परन्तु शाम्भवी मुद्रा कुलकामिनी की नाईं अतीव गोपनीय है। जो शाम्भवी मुद्रा से परिज्ञात हैं वे आदिनाथ तुल्य हैं, वे ही नारायणस्वरूप और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा स्वरूप हैं इसमें सन्देह नहीं, यह सत्य सत्य ही है यह वाक्य श्री महादेव जी ने सत्य ही कहा है ॥९७-१००॥

पञ्चधारणामुद्रा

शाम्भवी मुद्राका वर्णन हो चुका अब पञ्च धारणामुद्रा कही जा रही है सुनो। यह पञ्चधारणा मुद्रा सिद्ध होनेसे इस संसारमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पञ्चविध धारणा मुद्रा सिद्ध होनेसे मानवगण इस शरीरसे ही सुरलोक गमनागमन कर सकते हैं और वे मनोगतित्व और खेचरत्वका लाभ कर लेते हैं ॥१०१-१०२॥

पार्थिवीं धारणामुद्रां यः करोति च नित्यशः।
मृत्युञ्जयः शिवः सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि ॥१०४॥

आम्भसीधारणामुद्रा

शङ्खेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभं
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्त सदा विष्णुना।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा दुःसहतापपापहरणी स्यादाम्भसीधारणा ॥१०५॥
आम्भसीं परमां मुद्रां यो जानाति स योगवित्।
गभीरेऽपि जले घोरे मरणं तस्य नो भवेत् ॥१०६॥
इयं तु धारणा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः
प्रकाशात्सिद्धिहा नः स्यात्सत्यं वच्मि च तत्त्वतः ॥१०७॥

आग्नेयीधारणामुद्रा

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं बीजं त्रिकौणाऽन्वितं
तत्त्वं तैजसमाप्रदीप्तमरुणं रुद्रण यत्सिद्धिदम्।

पार्थिवीधारणा मुद्रा

पृथ्वी तत्त्वका वर्ण हरितालकी नाईं, इसका बीज लकार (ल), इसकी आकृति चतुष्कोणविशिष्ट और देवता इसके ब्रह्मा हैं। योग प्रभावसे इस पृथ्वी तत्त्वको हृदयके बीचमें प्रकाशित करके चित्तके साथ एकत्रित करके प्राण वायु आकर्षणपूर्वक पांच घड़ी तक कुम्भक योग अभ्यास करनेसे पृथ्वी धारणा हुआ करती है, इसका दूसरा नाम अधोधारणा मुद्रा है, इसके अभ्याससे योगी पृथ्वी को जय कर सकता है अर्थात् पृथ्वीके यावन्मात्र पदार्थ उसके वशीभूत ही जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन इस पृथिवीधारणा मुद्राका अभ्यास करता है वह साक्षात् मृत्युञ्जयके तुल्य होकर पृथिवी पर विचरण करता रहता है ॥१०३-१०४॥

आम्भसी धारणामुद्रा

जलतत्त्वका वर्ण शङ्ख शशि और कुन्दवत् धवल इसकी आकृति चन्द्रवत्, बीज वकार व और देवता विष्णु हैं। योगप्रवाहसे हृदयके बीचमें जलतत्त्वका उदय करके प्राण वायु आकर्षण द्वारा एकाग्रचित हो पांच घड़ी तक कुम्भक करनेसे जल धारणा अर्थात् आम्भसी मुद्रा हुआ करती है। इस मुद्राके

प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये
देषा कालगभीरभीतिहरणी वैश्वानरी धारणा ॥१०८॥
प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ संपतेद्यदि साधकः।
एतन्मुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक् ॥१०९॥

वायवीधारणामुद्रा

यद्भिन्नाऽञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं धूम्रावभासं परं
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये-
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा ॥११०॥
इयं तु धारणा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।
वायुना म्रियते नाऽपि खे गतेश्च प्रदायिनी ॥१११॥
शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्य कस्यचित्।
दत्ते सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च पण्डिते ! ॥११२॥

अभ्यास से जल के बीच का सब भय दूर हो जाता है और असह्यभाव भय का पुनः उदय नहीं होता। जो योगवित् साधक इस मुद्रा को जान लेते हैं भीषण गम्भीर जल के बीच डूबने पर भी उनकी मृत्यु नहीं होती। यह आम्भसी मुद्रा परम श्रेष्ठ है और अतीव गोपनीय है, मैं सत्य कहता हूँ कि इसके प्रकाश करने से सिद्धिकी हानि हुआ करती है ॥१०५-१०७॥

आग्नेयी धारणामुद्रा

नाभिस्थल अग्नितत्त्वका स्थान है, इसका वर्ण इन्द्रगोप कीटकी नाईं, बीज रकार र आकृति त्रिकोण और देवता रुद्र है। यह तत्त्व तेजःपुञ्जशाली दिप्तिमान और सिद्धिदायक है। योगाभ्यास द्वारा अग्नितत्वका उदय करके एकाग्रचित हो पांच घड़ी तक कुम्भक द्वारा प्राण वायु धारण करनेसे आग्नेयी धारणा हुआ करती है। इसके अभ्याससे संसार भय दूर हो जाता है और अग्नि से भी साधककी मृत्यु नहीं होती। यदि साधक प्रदीपवह्निके बीचमें निपतित हो तो भी इस मुद्राके प्रभावसे जीवित रहेगा और कदापि मृत्यु उसको ग्रहण नहीं कर सकेगी ॥१०८-१०९॥

आकाशीधारणामुद्रा

यत्सिन्धौ वरशुद्धवारिसदृशं व्यौमं परं भासिते।
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकाराऽन्वितम्।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणाम् ॥११३॥
आकाशीधारणामुद्रां यो वेत्ति स च योगवित्।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलयेऽपि न सीदति ॥११४॥

आश्विनीमुद्रा

आकुञ्चयेद्गुदद्वारं भूयोभूयः प्रकाशयेत्।
सा भेवेदाश्विनी मुद्रा शक्तिबोधनकारिणी ॥११५॥
अश्विनी परमा मुद्रा सर्वरोगविनाशिनी।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥११६॥

पाशिनीमुद्रा

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद्दृढबन्धनम्।

वायवी धारणामुद्रा

वायुतत्त्वका वर्ण मर्दित अञ्जन की नाईं और धूम्रकी नाईं कृष्ण वर्ण, बीज यकार (य) और देवता ईश्वर है। यह तत्त्व सत्त्वगुण है, योगाभ्यास द्वारा इस तत्त्वका उदय करके एकाग्रचित हो कुम्भक द्वारा पांच घड़ी तक प्राणवायु धारण करने से वायवी धारणा सिद्ध होती है। इस मुद्राके अभ्याससे वायु द्वारा साधककी मृत्यु नहीं होती और साधकको शून्य मार्गमें विचरण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। यह मुद्रा श्रेष्ठ कही जाती है, इसके द्वारा जरा और मृत्यु भय नाश होता है। इस मुद्रा में सिद्धि प्राप्त साधक वायु से कदापि मृत्युको प्राप्त नहीं होता और गगनमार्ग में विचरण कर सकता है। जो मनुष्य शठ अथवा भक्तिहीन है उसको कदापि यह मुद्रा प्रदान न की जाय, शठ अथवा भक्तिहीनको यह मुद्रा प्रदान करनेसे अपनी सिद्धि की हानि होती है ॥११०-११२॥

आकाशीधारणा मुद्रा

आकाशतत्त्व का वर्ण विशुद्ध सागरवारिकी नाई, बीज हकार (ह) और देवता सदाशिव हैं। इस आकाशतत्त्वको अभ्यास द्वारा उदित करके एकाग्रचित्त

सा एव पाशिनी मुद्रा शक्तिबोधनकारिणी ॥११७॥
एषा हि पाशिनी मुद्रा बलपुष्टिविधायिनी।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥११८॥

काकीमुद्रा ।

काकचञ्चुवदास्येन पिवेद्वायु शनैः शनैः।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी ॥११९॥
काकी मुद्रा परा गोप्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
यस्याः प्रसादमात्रेण न रोगी काकवद्भवेत् ॥१२०॥

मातङ्गिनीमुद्रा

कण्ठदघ्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण चाऽऽहरेत् ॥१२१॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात्कुर्यादेवं पुनः पुनः।
मातङ्गिनी परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥१२२॥
बिरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः।
कुर्वन्मातङ्गिनीं मुद्रां मातङ्ग इव जायते ॥१२३॥

हो प्राणवायु आकर्षण पूर्वक पांचघड़ी तक कुम्भक करनेसे आकाशीधारणा की सिद्धि होती है । इसके साधनसे देवत्व और मुक्तिलाभ होता है, जो इस धारणा को जानते हैं वे ही परमयोग वेत्ता है, उनको कदापि मृत्यु ग्रास नहीं कर सकती अर्थात् वे इच्छा मृत्यु होकर प्रलय काल तक रह सकते हैं ॥११३-११४॥

आश्विनी मुद्रा

पुनः पुनः गुह्यद्वार आकुञ्चन और प्रसारण करनेसे आश्विनीमुद्रा हुआ करती है, यह मुद्रा प्रबोधकारिणी कही जाती है । परमश्रेष्ठ आश्विनीमुद्राके प्रभावसे सर्वविध रोग शान्तिको प्राप्त होते हैं और साधक बल और पुष्टिको प्राप्त करके अकाल मृत्युके हाथसे बच जाता है ॥११५-११६॥

पाशिनी मुद्रा

पादद्वय कण्ठकी ओरसे पीठकी ओर ले जाकर दृढ़रूपसे बन्धन करनेसे पाशिनी मुद्रा हुआ करती है, यह मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी है । इस परम श्रेष्ठ मुद्रा द्वारा बल और पुष्टिकी प्राप्ति होती है, इस कारण सिद्धि-अभिलाषी साधकगण यत्नपूर्वक इसका अभ्यास करें ॥११७-११८॥

यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां पराम् ॥१२४॥

भुजङ्गिनीमुद्रा

वक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्याऽनिलं कण्ठेन यत्पिबेत् ।
सा भवेद्भुजगी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥१२५॥
सर्वरोगा विनश्यन्ति भुजगीमुद्रया ध्रुवम् ।
योगसिद्धिप्रदा चेयं प्रोक्ता योगपरायणैः ॥१२६॥

काकी मुद्रा

मुख काकचञ्चुकी नाई करके धीरे धीरे वायुपान करनेसे काकी मुद्रा हुआ करता है, इसके साधनसे नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है। यह श्रेष्ठ काकी मुद्रा सर्व-तन्त्रों में गोपनीय कही गई है, इसके द्वारा साधक काक्वत निरोगी हो जाता है ।।११९-१२०।।

मातङ्गिनी मुद्रा

आकण्ठ जलमें अवस्थित रहकर प्रथममें नाक के द्वारा जल ग्रहण करके मुख द्वारा निकाल दिया जाय, पुनः मुख द्वारा जल ग्रहण करके नाक द्वारा बहिर्गत किया जाय, इस प्रकार बारम्बार करनेसे मातङ्गिनी मुद्रा हुआ करती है। इस मुद्राके साधनसे जरा और मृत्यु साधकको आक्रमण नहीं कर सकते। निर्ज्जन स्थानमें अवस्थित रहकर एकाग्रचित हो मातङ्गिनीमुद्राका आचरण करने योग्य है। इस मुद्राके साधनसे साधक मातङ्गवत् बलशाली हो जाता है। योगी चाहें किसी स्थान में अवस्थित रहें इस मुद्राके साधनसे उसको परम सुख की प्राप्ति होती है इस कारण यत्नपूर्वक इसका आचरण करना उचित है ।।१२१-१२४।।

अथ प्रत्याहारप्रकरणम्

प्रत्याहारवर्णनम्

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशम् ।।१।।
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।२।।
यत्र यत्र गता दृष्टिर्मनस्तत्र प्रगच्छति।
ततः प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।३।।
पुरस्कारं तिरस्कारं मनः सर्वं वशं नयेत्।
मुद्राणां साधनाच्चैव प्रत्याहारः प्रजायते ।।४।।
शीतं वापि तथा चोष्णं यन्मनः स्पर्शयोगतः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।५।।
सुगन्धे वाऽपि दुर्गन्धे घ्राणेषु जायते मनः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।६।।

भुजङ्गिनी मुद्रा

मुखविवर किंचित् प्रसारित करके गल द्वारा वायुपान करने से भुजङ्गिनी मुद्रा हुआ करती है; इसके साधन से जरा और मृत्युभय दूर होता है। इसके साधन से सकल रोगों का नाश होता है और योगसिद्धि होती है ॥१२५-१२६॥

प्रत्याहार प्रकरण

प्रत्याहार वर्ण

अब सर्वोत्तम प्रत्याहार योगका वर्णन किया जा रहा है जिसके अवगत होनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, ये छः विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। चित्त जहाँ जहाँ चञ्चल होकर भ्रमण करता है, प्रत्याहार क्रिया द्वारा मन वहींसे लौटकर आत्माके वश हो जाता है। जहाँ जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ वहाँ मन भी चला जाता है, प्रत्याहार क्रियासे वहींसे मन लौटकर आत्माके वशीभूत हो

मधुराम्लकतिक्तादिरसं याति यदा मनः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥७॥
षट्कर्मासनमुद्रासाधनतः सिद्धीः समासाद्य।
प्रत्याहारे तिष्ठति योगिवराणां मनो यदा सम्यक् ॥८॥
यथाऽधिकारं तानाशु प्रत्याहारक्रियां तदा।
गुरवो योगतत्त्वज्ञा भिन्नामुपदिशन्ति वै ॥९॥
जालन्धरश्चोड्डीयानो मूलबन्ध इति त्रयम्।
कुर्वाणो युगपद्योगी प्रत्याहारक्षमो भवेत् ॥१०॥
प्रत्याहारस्य लाभे हि शाम्भवी मुख्यकारणम्।
गुरुभक्तो ह्यनायासं रहस्यं ज्ञातुमर्हति ॥११॥
यो योगी शाम्भवीसेवी यो वा स्यात् कवलीक्षमः।
प्रत्याहारस्तयोर्नूनं सुलभो नात्र संशयः ॥१२॥
प्रत्याहारस्य सिद्धया वै प्रकृतिर्जीयते क्षणात्।
तत्सिद्धौ सहकारं वै मुद्राः कुर्वन्ति नित्यशः।
प्राणायामेन दृढता प्रत्याहारस्य जायते ॥१३॥

जाता है । पुरस्कार हो अथवा तिरस्कार मन सबमें ही लग जाता है; परन्तु मुद्राओंके साधनसे प्रत्याहारकी प्राप्ति होती है । शीत हो अथवा उष्ण मन उनमें लग जाता है, परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन उनमें से हटकर आत्मा के वशीभूत हो जाता है । सुगन्धि हो अथवा दुर्गन्धि उसमें अवश्य करके मन जाता है, परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन उनमें से हटकर आत्मा के वशीभूत हो जाता है । मधुर हो, अम्ल हो, तिक्त हो, कषाय हो अथवा किसी प्रकारका रस हो मन उनमें चंचल होता है; परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन वहांसे हटकर आत्माके वशीभूत हो जाता है । योगीका मन जब प्रत्याहार भूमि में ठहरनेके उपयोगी हो जाता है, उस समय मुद्रातत्त्वज्ञ गुरुदेव विभिन्न प्रकार के साधकको स्व- स्व अधिकार के अनुसार प्रत्याहार साधनकी क्रियाओंका उपदेश देते हैं । उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध और मूलबन्ध इन तीनोंको एक साथ करनेसे योगी शीघ्र ही प्रत्याहार भूमिको लाभ कर सकते हैं । शाम्भवी मुद्रा प्रत्याहार प्राप्तिका साक्षात कारण है । गुरुभक्त शिष्य अनायास ही प्रत्याहार साधनके इन सब रहस्योंको जान सकता है । केवली प्राणायाममें जिसने सफलता लाभ किया है,

---

सिद्धिवर्णनम्

चतुर्विधाः सिद्धयः स्युः प्राप्या या योगवित्तमैः ।
आध्यात्मिकी चाऽधिदैवी सहजा चाऽधिभौतिकी ॥१४॥
मन्त्रौषधितपोभिश्च प्राप्यन्ते सिद्धयोऽखिलाः ।
स्वरोदयेनाऽपि तथा संयमेनेति निश्चयः ॥१५॥
इत्थं चतुर्विधा भेदाः सिद्धेः प्रोक्ता मनीषिभिः ।
भौमस्थूलपदार्थानां सिद्धिः स्यादाऽऽधिभौतिकी ॥१६॥
दैवशक्तिसमापत्तिर्यत्र सा चाऽऽधिदैविकी ।
आध्यात्मिकी च विज्ञेयाः प्रज्ञासम्बद्धसिद्धयः ॥१७॥
उन्नतश्चाऽधिकारोऽस्याः परमः प्रोच्यते बुधैः ।
आविर्भावो हि वेदानां जायते यत्र निश्चितम् ॥१८॥
सहजाः सिद्धयः प्रोक्ता जींवन्मुक्तस्य सिद्धयः ।
सिद्धेर्हि बहवो भेदा विनिर्दिष्टा महर्षिभिः ॥१९॥
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता ।

जो शाम्भवीमुद्रासेवी है ऐसे योगीके लिये प्रत्याहारसाधन अति सरल हो जाता है। प्रत्याहारकी सिद्धिसे साधक प्रकृतिजय करनेकी शक्ति प्राप्त करता है, प्रत्याहारकी सिद्धिमें मुद्रा ही परमसहायक है और प्राणायामके द्वारा प्रत्याहार की दृढ़ता होती है।१-१३॥

सिद्धिवर्णन

योगियोंको प्राप्त होनेवाली सिद्धियां चार प्रकारकी होती हैं यथा- अध्यात्मसिद्धि, अधिदैवसिद्धि, अधिभूतसिद्धि और सहजसिद्धि । ये सब सिद्धियां ओषधि मन्त्र, तप, स्वरोदय और संयमशक्ति द्वारा प्राप्त होती हैं। सिद्धि के पूर्वोक्त चार भेद इस प्रकारसे हैं, यथा भौतिक स्थूल पदार्थोंकी प्राप्ति आधिभौतिक कहाती है, दैवीशक्तियोंकी प्राप्ति अधिदैव सिद्धि कहाती है, बुद्धि सम्बन्धी सिद्धि आध्यात्मिक सिद्धि कहाती है । इस सिद्धिका अधिकार बहुत उन्नत है, वेदका आविर्भाव इसी अवस्था में होता है और जीवन्मुक्तकी सिद्धि सहज कहाती है । योगतत्त्ववेत्ताओंने सिद्धियोंके और भी कई एक भेद किये हैं, यथा-प्रतिभा, श्रवणा, वेदना, दर्शना, आस्वादा और वार्ता । वेद्य वस्तुका ज्ञान

तृतीया वेदना चैव तुरीया चेह दर्शना ।
आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वार्त्ता वै षष्ठिका स्मृता ॥२०॥
बुद्धिर्विवेचना वेद्या बुध्यते बुद्धिरुच्यते ।
प्रतिभा प्रतिभा वृत्तिः प्रतिभाव इति स्थितिः। ॥२१॥
सूक्ष्मव्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ।
सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु ॥२२॥
श्रवणा सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः ।
ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि ॥२३॥
स्पर्शस्याऽधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता ।
दर्शना दिव्यरूपाणां दर्शनं चाऽप्रयत्नतः ॥२४॥
संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नाऽऽस्वादो ह्यप्रयत्नतः ।
वार्त्ता च दिव्यगन्धानां तन्मात्रा बुद्धिसंविदा ।
विन्दन्ते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभुवनं ध्रुवम् ॥२५॥
समाधिबुद्धिः प्राकाश्यं येन याति निरन्तरम् ।

विचार द्वारा जिसमें हो उसे बुद्धि कहते हैं; परन्तु प्रतिभा उस बुद्धिको कहते है कि जिसके द्वारा बिना विवेचना किए भी दर्शन मात्रसे वेद्य वस्तुका ज्ञान हो जाय। सूक्ष्म, व्यवहित, अतीत, विप्रकृष्ट और भविष्यद्वस्तुका ज्ञान प्रतिभासे होता है। जिस अवस्थामें ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, गुप्त आदि शब्दोंका श्रवण योगीको बिना प्रयत्न से होने लगे उस सिद्धिका नाम श्रवणा है । सकल वस्तुओंके प्रत्यक्षको वेदना कहते हैं । अनायास जब दिव्य रूपोंका दर्शन होने लगे उस अवस्थाका नाम दर्शना है । बिना प्रयत्न के जब दिव्यरसोंका आस्वादन होने लगे उसे आस्वादा कहते हैं और जब अलौकिक गन्धोंका प्रत्यक्ष योगी को हो उसको वार्ता कहते हैं, इस अवस्थामें योगीको सकल ब्रह्माण्डका ज्ञान हो जाता है ॥ १४-२५॥ संयमके द्वारा समाधि विषयक बुद्धिका प्रकाश होता है, संयम ही मुख्य है, संयम शक्तिकी वृद्धि द्वारा योगी जो चाहे सो कर सकता है । कहां कहां संयम करनेसे क्या क्या सिद्धि प्राप्त होती है सो योगिराज श्रीगुरुदेवसे जानने योग्य है । संयम शक्ति समाधि भूमिमें प्राप्त होती है; परन्तु अन्य शक्तियां पहले की भूमियों में भी प्राप्त हो सकती हैं, हठयोगियोंमें तपःशक्तिकी प्रधानता है सो प्रत्याहार

स संयमो मुख्यतमः प्रोच्यते कृतबुद्धिभिः ॥२६॥
यदृच्छाचारिताप्राप्तिः संयमस्य विवृद्धितः ।
कुत्र संयमतः सिद्धिः प्राप्यते का हि योगिभिः ॥२७॥
विज्ञेयमेतद्गुरुभिर्योगमार्गविशारदैः ।
संयमः प्राप्यते धीरैः समाधावेव केवलम् ॥२८॥
शक्तयोऽन्याः प्रपद्यन्ते पूर्वभूमौ मनीषिभिः ।
हठयोगिषु मुख्या स्यात्तपःशक्तिश्च साऽऽप्यते ॥२९॥
प्रत्याहारे शुभकराः सिद्धयो हि सुखावहाः ।
तथाऽपि सर्वथा हेया आत्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥३०॥
न ताभिर्मोह आप्येत स्वात्मोन्नतिनिरीक्षिकाः ।
योगाऽनुशासनं चैतद्वैराग्यसहकारतः ॥३१॥
सिद्धिर्हि हठयोगस्य सर्वरोगविनाशिका ।
रोगा वै योगिनां योगतत्त्वज्ञस्योपदेशतः ॥३२॥
उपशाम्यन्ति निखिलाश्चेति प्रोचुर्महर्षयः ।

भूमिमें ही प्राप्त हो सकती है । सिद्धियां परम सुखकर होने पर भी सर्वथा निन्दनीय और हेय हैं । आत्मोन्नति का इच्छुक योगी वैराग्यकी सहायतासे उनसे विमोहित न हो ऐसा ही योगानुशासन है । हठयोग सिद्धिमें एक विशेषता यह है कि उससे सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है । योगियों को जो कुछ रोग हो सो योगतत्त्वज्ञ महात्माओंके उपदेश द्वारा शान्त हो सकता है, रोगोंकी शान्ति करनेमें तैतीस आसन, पच्चीस मुद्रा और अष्ट प्रकारके प्राणायाम परम सहायक हैं । संयम क्रिया सर्वोपरि है, आसन मुद्रा और प्राणायामकी भिन्न भिन्न क्रियाओं में भिन्न भिन्न रोग मुक्तिकारी योगसिद्धिकर शक्तियाँ निहित हैं ।।१४-३५।।

आसनानि त्रयस्त्रिंशन्मुद्रा वै पञ्चविंशतिः ।।३३।।
प्राणायामास्तथा चाष्टौ रोगशान्तिसहायकाः ।
मुख्यस्तु संयमः प्रोक्तो मुद्रायामासने तथा ।।३४।।
प्राणायामे विभिन्ना हि शक्तयो निहिता शुभाः ।
रोगा याभिर्विनश्यन्ति योगसिद्धिश्च जायते ।।३५।।

प्राणायाम प्रकरण

प्राणायाम वर्णन

प्राण ही महाशक्ति है; प्राण ही जगत् रक्षक है, प्राणके जय करनेसे सबकुछ जय हो सकता है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे प्राणके दो भेद हैं। प्राणजय करने वाली क्रियाको प्राणायाम कहते हैं। प्राणजयकी क्रिया त्रिभेदमें विभक्त है। मन्त्रयोग में प्राणजयकी क्रिया धारण प्रधान है, हठयोगमें वायु प्रधान है और लय योगमें सूक्ष्म क्रियाका साधन होता है वह मनःप्रधान है। वायुप्रधान प्राणायाम क्रिया सर्वहितकर है। अब प्राणायामका वर्णन किया जा रहा है, प्राणायाम साधनसे साधक देवताके समान हो जाता है। प्राणायाम साधन करने के लिये चार बातोंकी आवश्यकता है; प्रथम उपयुक्त स्थान, द्वितीय नियमित समय, तृतीय मिताहार का अभ्यास और चतुर्थ नाड़ी शुद्धि ।।१-६।।

प्राणायाम भेद

प्राणायामके आठ भेद हैं, यथा-सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली ।।७।।

अथ प्राणायामप्रकरणम्

प्राणायामवर्णनम्

प्रधानशक्तयः प्राणास्तै वै संसाररक्षकाः।
वशीकृतेषु प्राणेषु जीयते सर्वमेव हि ।।१।।
प्राणास्तु द्विविधा ज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मप्रभेदतः।
यया जयः स्यात्प्राणानां प्राणायामः स चोच्यते ।।२।।
मन्त्रे स्याद्धारणा मुख्या त्रिभेदास्तु जयक्रिया।
हठे वायुप्रधाना वै प्रोक्ता प्राणजयक्रिया ।।३।।
मनःप्रधाना भवति साध्या सूक्ष्मक्रिया लये।
सा च वायुप्रधाना हि सर्वश्रेयस्करी मता ।।४।।
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य तद्विधिम्।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः ।।५।।
आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात्प्राणायामे च साधयेत् ।।६।।

सहित प्राणायाम

सहित प्राणायाम दो प्रकार का होता है, यथा-सगर्भ और निगर्भ । जो प्राणायाम बीजमन्त्र सहित किया जाय उसको सगर्भ और जो बीजमन्त्र रहित हो उसे निगर्भ प्राणायाम कहते हैं । सगर्भ प्राणायाम जिस प्रकार से किया जाता है वह मैं प्रथम कहता हूँ । पूर्व दिशा अथवा उत्तरदिशाकी ओर मुख करके सुख देने वाले आसन पर बैठकर ब्रह्मा का ध्यान करे, वह ब्रह्मा रक्तवर्ण "अ" कार रूपी और रजोगुणविशिष्ठ हैं । तत्पश्चात् "अं" इस बीज मन्त्र को षोडशवार जप द्वारा वाम नासिकासे वायु पूरक करे, कुम्भक करनेके पहिले और वायु पूरण करने के पश्चात् उड्डीयान बन्धका आचरण करना उचित है । तदनन्तर सत्त्वगुणयुक्त "उ" काररूपी कृष्णवर्ण हरिके ध्यान पूर्वक "उं" बीजको चतु:षष्टिवार जपपूर्वक कुम्भक द्वारा वायुको धारण करना उचित है । तत्पश्चात् तमोगुण "म" कार रूपी श्वेतवर्ण शिवके ध्यानपूर्वक "मं" बीजको द्वात्रिंशत् बार जप करते हुए दक्षिणनासिका द्वारा वायु रेचन कर दिया जाय । पुन: ऊपर लिखी हुई रीतिपर बीजमन्त्र जप द्वारा यथा संख्या और क्रमसे दक्षिण नासिका द्वारा वायु पूरक

प्राणायामभेदा:

सहित: सूर्यभेदीच उज्जायी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाऽष्टकुम्भका: ।।७।।

सहितप्राणायाम:

सहितो द्विविध: प्रोक्त: सगर्भश्च निगर्भक: ।
सगर्भो बीजसहितो निगर्भो बीजवर्जित: ।।८।।
प्राणायामं सगर्भञ्च प्रथमं कथयामि ते ।
सुखाऽऽसने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुख: ।।९।।
ध्यायेद्विधिं रजोरूपं रक्तवर्णमवर्णकम् ।
इडया पूरयेद्वायुं मात्राषोडशकै: सुधी: ।।१०।।
पूरकान्ते कुम्भकाद्य उड्डीयानं समाचरेत् ।
हरिं सत्त्वमयं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ।।११।।
चतु:षष्ठ्या मात्रया वै कुम्भकेनैव धारयेत् ।
तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकार शुक्लवर्णकम् ।।१२।।

करके कुम्भक करते हुए वामनासिका द्वारा वायु रेचन कर दिया जाय। इस प्रकार तीन आवृत्तिमें एक प्राणायाम होता है, इस रीति पर अनुलोम विलोम द्वारा पुनः पुनः प्राणायाम अनुष्ठान करने योग्य है। वायु पूरकके अन्तमें कुम्भक शेष पर्यन्त तर्ज्जनी मध्यमा के बिना कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ इन तीन अंगुलियोंके द्वारा नासापुटद्वय धारण किया जाय अर्थात् कुम्भक करते समय वामनासामें कनिष्ठा अंगुलि और अनामिका अंगुलि देकर दक्षिण नासिका में केवल वृद्ध अंगुष्ठ लगाकर धारण किया जाय। साधारण सहित प्राणायाम केवल व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र द्वारा रेचक पूरक कुम्भक करने पर भी हो सकता है। कर्मकाण्डमें इसका विधान है ध्यान के बिना भी पूर्व कथित संख्या के अनुसार केवल प्रणव अथवा केवल बीजमन्त्रकी सहायतासे जो सहित प्राणायाम किया जाता है वह भी आरुरुक्षु योगी के लिये कल्याणप्रद है। जो प्राणायाम बीजमन्त्र न जपकर साधन किया जाय उसीको निगर्भ प्राणायाम कहते हैं। पूरक कुम्भक और रेचक इन तीन अंगसमन्वित सहित प्राणायाम साधन करनेकी विधिका क्रम एक संख्यासे लेकर शत संख्या तक है। मात्राके अनुसार प्राणायामके तीन भेद हैं, यथा-

---

द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः।
पुनः पिङ्गलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत् ॥१३॥
इडया रेचयेत्पश्चात्तद्बीजेन क्रमेण तु।
अनुलोमविलोमेन वारं वारं च साधयेत् ॥१४॥
पूरकान्ते कुम्भकान्ते धृतनासापुटद्वयम्।
कनिष्ठाऽनामिकाऽङ्गुष्ठेस्तर्जनीमध्यमे विना ॥१५॥
प्राणायामो हि सहितो गायत्र्यापि सुसिध्यति।
कर्मकाण्डे विधेयोऽसौ नान्यत्र क्वचिदिष्यते ॥१६॥
केवलैर्बीजमन्त्रैर्वा केवलप्रणवेन वा।
आरुरुक्षोर्योगिनो हि कृतोऽयं शिवदो भवेत् ॥१७॥
प्राणायामो निगर्भस्तु विना बीजेन जायते।
एकादिशतपर्यन्त पूरकुम्भकरेचनम् ॥१८॥
उत्तमा विंशतिर्मात्रा मध्या षोडशमात्रिका।
अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधा स्मृताः ॥१९॥

विंशति मात्रा साधन, षोडशमात्रा साधन और द्वादश मात्रा साधन। विंशति मात्रा साधन उत्तम, षोडश मात्रा मध्यम और द्वादश मात्रा अधम है। अधममात्रा प्राणायामकी सिद्धिसे शरीरसे स्वेद निर्गत होता है, मध्यम मात्रा प्राणायाम साधन करनेसे मेरुदण्ड कम्पित होने लगता है अर्थात् गुह्यद्वारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक एक नाड़ी कांपती हुई अनुभव होती है और उत्तम मात्रा प्राणायाम के साधनसे साधक भूमि त्याग करके शून्यमार्गमें उत्थित हो सकता है। स्वेदनिर्गम, मेरु कम्पन और भूमित्याग, ये तीनों प्राणायाम सिद्धिके चिह्न हैं। इस प्राणायामके साधनसे खेचरत्व शक्तिकी प्राप्ति होती है, सब प्रकारके रोगों का नाश होता है, परमात्मशक्तिका प्रबोध होता है और दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है; जो मनुष्य प्राणायाम साधन करते हैं उनके चित्तमें परमानन्दकी प्राप्ति से वे परम सुखी हो जाते हैं ॥८-२१॥

सूर्यभेदी प्राणायाम

सहित प्राणायाम कहा गया अब सूर्यभेदी प्राणायाम कहा जाता है। सर्वाग्रे जालन्धरबन्ध मुद्राका अनुष्ठान करके दक्षिणनासिका द्वारा वायु पूरक करते हुए यत्नपूर्वक कुम्भक द्वारा वायुको धारण करते रहे और जब तक नख

अधमाज्जायते स्वेदो मेरुकम्पश्च मध्यमात्।
उत्तमाच्च क्षितित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥२०॥
प्राणायामात्खेचरत्वं प्राणायामाद्रुजाक्षय:।
प्राणायामाच्छक्तिबोध: प्राणायामान्मानोन्मनी।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ॥२१॥

सूर्यभेदीप्राणायामः

कथित: सहित: कुम्भ: सूर्यभेदनकं शृणु।
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्त्यनिलं बहि: ॥२२॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुम्भकेन जलन्धरै:।
यावत्स्विन्ना: केशनखास्तावत्कुर्वन्तु कुम्भकम् ॥२३॥
प्राणोऽपान: समानश्चोदानव्यानौ तथैव च।
नाग: कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जय: ॥२४॥
हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमण्डले।
समानो नाभिदेशे तु उदान: कण्ठमध्यग: ॥२५॥
व्यानो व्याप्य शरीरं तु प्रधाना: पञ्च वायव:।

और केश द्वारा स्वेद निर्गत न हो तब तक कुम्भक ही किया जाय । प्राण, अपान, समान, उदान, और ध्यान, ये पञ्च वायु अन्तरस्थ और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय, ये पाँच वायु बहिःस्थ हैं । प्राण हृदय देश में, अपान गुह्य में, समान नाभि में उदान कण्ठ में और व्यान वायु समस्त शरीर में व्याप्त हो रहा है । ये पांच वायु अन्तर के हैं और नाग आदि पांच वायु वहिर के हैं । अब इन पांचोंका भी वर्णन किया जा रहा है ; नाग वायु उद्‌गार में, कूर्म वायु उन्मीलनमें, कृकर वायु क्षुत्कार में, देवदत्त वायु जृम्भणमें और धनंजय वायुदेह त्याग होनेपर भी शरीरमें स्थित रहता है । नाग वायु चैतन्य प्राप्त करता है, कूर्म वायु निमेषण करता है, कृकर वायु क्षुधा और तृषा बढ़ाता है, देवदत्त वायु जृम्भण कार्य करता है और धनञ्जय वायु द्वारा शब्दकी उत्पत्ति हुआ करती है और यह कदापि देहको त्याग नहीं करता । सूर्यभेदी कुम्भक करते समय इन उल्लिखित प्राणादि वायुसमूहको पिङ्गला नाडी द्वारा विभिन्न करके मूल देशसे समान वायु उठाया जाय, तदनन्तर धैर्यपूर्वक वेगसे वाम नासिका द्वारा रेचन कर दिया जाय। पुनरपि दक्षिण नासापुट द्वारा वायु पूरण करके सुषुम्ना में कुम्भक

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ॥२६॥
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ॥२७॥
कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।
न जहाति मृते क्वाऽपि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥२८॥
नागो गुह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
क्षुततृषं कृकरश्चैव चतुर्थं च विजृम्भणम् ।
भवेद्धनञ्जयाच्छब्दः क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥२९॥
सर्वे ते सूर्यसम्भिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाऽखण्डवेगतः ॥३०॥
पुनः सूर्येण चाऽकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥३१॥
कुम्भकः सूर्यभेदी तु जरामृत्युविनाशकः ।
बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहवह्निं विवर्धयेत् ।
इति ते कथितं सौम्य ! सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥३२॥

करके वाम नासापुट द्वारा रेचन कर दिया जाय। इसी प्रकार पुनः पुनः करनेसे सूर्यभेदी कुम्भक हुआ करता है। यह प्राणायाम जरा और मृत्यु का नाश करने वाला है, इसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति प्रबोधित होती है और देहस्थ अग्निकी विवृद्धि हो जाती है, यही अति उत्तम सूर्य भेदी नाम प्राणायाम का वर्णन है ॥२२-३२॥

उज्जायी प्राणायाम

बहिः स्थित वायु नासिका द्वारा आकर्षण करके और अन्तःस्थ वायुको हृदय और गलदेश द्वारा आकर्षण करके मुखमें कुम्भक द्वारा धारण किया जाय, तदनन्तर मुख प्रक्षालन पूर्वक जालन्धर मुद्राका अनुष्ठान किया जाता है, इस प्रकार निज शक्ति अनुसार वायुको धारण करनेसे उज्जायी प्राणायाम का साधन हुआ करता है। इसके साधन से नाना प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होती है और जो मनुष्य जरा और मृत्युसे बचनेकी इच्छा करते हों वे अवश्य इस प्राणायामका साधन करें और इसके साधनसे निश्चय करके सम्पूर्ण रोगोंका नाश होता है ॥३३-३५॥

उज्जायीप्राणायामः

नासाभ्यां वायुमाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत्।
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य वायुं वक्त्रे च धारयेत् ॥३३॥
मुखं प्रक्षाल्य सम्बध्य कुर्याज्जालन्धरं ततः।
आशक्ति कुम्भकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥३४॥
उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः।
नश्यन्ति सकला रोगाः साधनादस्य निश्चितम् ॥३५॥

शीतलीप्राणायामः

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥३६॥
सर्वदा साधयेद्योगी शीतलीकुम्भकं चरेत्।
सर्वे रोगा विनश्यन्ति योगसिद्धिश्च जायते ॥३७॥
क्षुत्कामाद्यग्निनिर्वाणात् शीतलीति प्रकीर्त्यते।
श्वासहृद्रोगभिदयं समाधिसाधको भवेत् ॥३८॥

शीतली प्राणायाम

जिह्वा द्वारा (काकचञ्चु रुप से) वायु आकर्षणपूर्वक धीरे-धीरे उदरको परिपूरित करके तत्पश्चात् थोड़ी देर धारण पूर्वक नासिका द्वारा रेचन कर देनेसे शीतली प्राणायाम हुआ करता है। साधकोंको सर्वदा कल्याणप्रद इस शीतली कुम्भकका अनुष्ठान करना उचित है, इसके साधन से सकल रोगोंका नाश होता है और योग की सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्राणायाम के द्वारा क्षुधा, तृष्णा तथा कामादिकी अग्नि शान्त होती है, इसलिए इसको शीतली कहते हैं। यह सकल प्रकार श्वासरोग तथा हृदयरोगकी महौषधि और समाधिका सहायक है ॥३६-३८॥

भस्त्रिका प्राणायाम

लुहारों के भस्त्रिका यन्त्र द्वारा जिस प्रकार वायु आकृष्ट किया जाता है उसी प्रकार नासिका द्वारा वायु समाकर्षणपूर्वक शनैः शनैः उदरमें वायु भरकर उदर को परिचालित करे। इस प्रकार से विंशतिवार वायु को परिचालित करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करते हुए पुनः भस्त्रिका यन्त्र द्वारा जिस प्रकार वायु निर्गत होता है उसी प्रकार नासिका द्वारा वायु निकाल देने से भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिकाप्राणायामः

भस्त्रैव लोहकाराणां संभ्रमेत् क्रमशो यथा।
तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः ॥३९॥
एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम्।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥४०॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुम्भकं सुधीः।
न च रोगा न च क्लेश आरोग्यं च दिने दिने ॥४१॥
भस्त्रिका प्राणायामस्य स्फुट संख्यानुसारतः।
मनसो धारणायाश्च तारतम्यानुसारतः।
व्याधीनामिह सर्वेषां मूलमुच्छिद्यते खलु ॥४२॥

भ्रामरीप्राणायामः

अर्धरात्रे गते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककूम्भकम् ॥४३॥
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम्।
प्रथमे झिंझिनादञ्च वंशीनादं ततः परम् ॥४४॥

हुआ करता है। यह कुम्भक यथानियम से तीनबार आचरण करने के योग्य है। इसके साधन द्वारा किसी प्रकार की व्याधि अथवा क्लेश साधक के शरीर में नहीं हो सकता और दिन दिन आरोग्य बढ़ता जाता है। भस्त्रिका प्राणायाम की संख्या तथा मन की धारणा के तारतम्यानुसार सकल रोगों का मूलोच्छेद हो जाता है ॥३९-४२॥

भ्रामरीप्राणायामः

रात्रि का अर्द्ध अंश व्यतीत होने पर जिस स्थान पर किसी जीव जन्तु का भी शब्द सुनाई न दे उस स्थान पर गमन पूर्वक योगी अपने हस्त द्वारा अपने कर्ण युगल को बन्द करके पूरक और कुम्भकका अनुष्ठान करे। इस प्रकार कुम्भक साधन करनेसे साधकके दक्षिण कर्णमें नाना प्रकारके शब्द सुनाई देंगे। वे शब्द देहके अभ्यन्तर ही उदित हुआ करते हैं। प्रथम झिल्लीरव, तदनन्तर वंशीरव, तदनन्तर मेघध्वनि, तदनन्तर झर्झरी नामक वाद्यध्वनि और तत्पश्चात् भ्रम के "गुन गुन" शब्द के नांई सुनाई देगा; तत्पश्चात् घंटा, कांस्य, तुरी, भेरी, मृदङ्ग, आनक दुन्दुभि आदि शब्द श्रुतिगोचर होंगे। इस प्रकार प्रतिदिन नाना

मेघझर्झरभृङ्गौघघण्टाकांस्यं ततः परम्।
तुरीभेरीमृदङ्गादिनिनादानकदुन्दुभिः।
एवं नानाविधो नादः श्रूयतेऽभ्यसनाद्ध्रुवम् ॥४५॥
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिषोऽन्तर्गतं मनः ॥४६॥
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
भ्रामरीसिद्धिमापन्नः समाधेः सिद्धिमाप्नुयात् ॥४७॥

मूर्च्छाप्राणायामः

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनो भ्रूयुगलान्तरम्।
सन्त्यज्य विषयान्सर्वान्मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ॥४८॥
आत्मना मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम्।
एवं नानाविधाऽऽनन्दो जायतेऽभ्यासतः स्फुटम्।
एवमभ्यासयोगेन समाधेः सिद्धिमाप्नुयात् ॥४९॥
मूर्च्छाप्राणायामतोऽस्मात् प्रत्याहारः सुसिध्यति।

प्रकारकी ध्वनि सुननेमें आया करेगी और पीछेसे अनहद शब्द की प्रतिध्वनि सुनाई दिया करती है । तत्पश्चात् साधक ध्वनिके अन्तर्गत परज्योति और ज्योतिके अन्तर्गत परब्रह्म में मन लय करता हुआ विष्णुके परम पद में लय प्राप्त हो जाता है । इस प्रकारसे भ्रामरी कुम्भकी सिद्धि हुआ करती है । इस प्राणायामके साधनसे समाधिकी प्राप्ति हो जाती है ।।४३-४७।।

मूर्च्छा प्राणायाम

प्रथममें सुखसे पूर्व कथित रीति पर कुम्भक का अनुष्ठान करके सब प्रकार के विषयों से मनको हटाकर, तत्पश्चात् भ्रूयुगलके बीचमें मनको लगाते हुए मनकी लयावस्था उत्पन्न करे तो मूर्च्छा कुम्भक का साधन हुआ करता है; इस कुम्भक द्वारा परमानन्दकी प्राप्ति हुआ करती है । इस प्रकार दिन प्रतिदिन इस प्राणायामके अभ्याससे नाना प्रकारका आनन्द प्राप्त होते होते अवशेष में समाधिकी सिद्धि हो जाती है । इस प्राणायामके द्वारा स्वतः ही प्रत्याहारमें सिद्धिलाभ होता है । वासनाक्षय और तत्त्वज्ञानका मूल मनोनाश है । इस प्राणायामके द्वारा मनोनाश सहज साध्य हो जाता है । सकल प्रकार आधि व्याधि

वासनायाः क्षयस्तत्त्वज्ञानकार्यं मनोलयः ।।५०।।
अनेन प्राणायामेन मनोनाशो भवत्यलम् ।
सर्वाधिव्याधिविलये महौषधमयं ध्रुवम् ।।५१।।

केवलीप्राणायामः

भुजङ्गिन्याः श्वासवशादजपा जायते ननु ।
हङ्कारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः ।।५२।।
षट् शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिम् ।
अजपां नाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा ।।५३
मूलाऽऽधारे यथा हंसस्तथा हि हृदि पङ्कजे ।
तथा नासापुटद्वन्द्वे त्रिभिर्हंससमागमः ।।५४।।
षण्णवत्यङ्गुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतो वायुः स्वभावाद्द्वादशाङ्गुलिः ।।५५।।
गायने षोडशाङ्गुल्यो भोजने विंशतिस्तथा ।
चतुर्विंशाङ्गुलिः पान्थे निद्रायां त्रिंशदङ्गुलिः ।।५६।।

के तत्काल दूर करने के लिये यह प्राणायाम महौषधिस्वरूप है ।।४८-५१।।

केवली प्राणायाम

भुजङ्गिनीके श्वांससे अर्थात् कुण्डलिनी शक्तिके प्रभावसे जीव सदा अजपा जप करता है, जिसमें श्वास निकलते समय "हं" और जाते समय "सः" मन्त्र उच्चारण होकर अजपाजप होता है । "हंस" अर्थात् "सोहं" रूप प्रकृतिपुरुषसंयुक्त गायत्री जप जीव दिवा रात्रि करता रहता है । उसकी संख्या एक विंशति सहस्त्र एवं षट् शत (२१६००) है । मूलाधारपद्म, हृदयपद्म और नासापुट द्वय, इन तीनों स्थानों द्वारा यह जप हुआ करता है । इस श्वासवायु के बाहर निकलनेका परिमाण षण्णवति अङ्गुली है और इसकी स्वाभाविक बहिर्गति द्वादश अङ्गुली, गायन में इसका परिभाषा षोडश अङ्गुली, भोजन में विंशति अङ्गुली, पथपर्यटन में चतुर्विंशति अङ्गुली और व्यायाममें उससे भी अधिक हुआ करता है । वायुकी स्वाभाविक गति द्वादश अङ्गुली है यह पूर्व ही कहा गया है; इस द्वादश अङ्गुली परिमाणसे वायुकी गति जितनी न्यून होती है उतनी ही परमायुकी वृद्धि हुआ करती है परन्तु इस परिमाणसे अधिक बढ़ जाने से परमायु

मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम् ।
स्वभावेऽस्य गते न्यूने परमायुः प्रवर्धते ।।५७।।
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चाऽन्तरोद्गते ।
तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते ।।५८।।
वायुना घटसम्बन्धे भवेत्केवलकुम्भकम् ।
यावज्जीवं जपेन्मन्त्रमजपाख्यं यथाविधि ।।५९।।
अद्यावधि धृतं संख्याविभ्रमं केवली कृते ।
अत एव हि कर्तव्यः केवली कुम्भको नरैः ।।६०।।
केवली चाऽजपा सङ्ख्या द्विगुणा च मनोन्मनी ।
नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत् ।।६१।।
कुम्भकस्य न काठिन्यमक्रमौ पूररेचकौ ।
विद्यते यत्र सा ज्ञेया सुसाध्या केवली क्रिया ।।६२।।
वशीभवत्सु प्राणेषु गुरूणामुपदेशतः ।
अवाप्यन्ते क्रियाः सर्वा नियम्याः प्राणवायवः ।।६३।।
आदौ प्राणक्रिया तस्मात्संयम्या भवति ध्रुवम् ।

क्षय हुआ करता है । जबतक देह अन्तर्गत प्राणवायु अवस्थित है, तबतक जीवकी मृत्यु होने की सम्भावना नहीं, कुम्भक साधनमें प्राण वायु ही मूलभूत कारण है । जीव देह धारण करके जबतक जीवित रहता है तबतक वह यथाविहित परिमित संख्याके अनुसार अजपाजप करता रहता है; देहके बीचमें प्राण वायुका धारण करना ही केवली कुम्भक कहाता है; केवली कुम्भकसाधन जितना अधिक होता है उतनी ही मनकी लयावस्था हुआ करती है । नासापुट द्वारा वायु आकर्षणपूर्वक केवली कुम्भक किया जाता है । केवलीकी क्रिया सहज कहाती है क्योंकि उसमें रेचक पूरकका कोई क्रम नहीं है और न कुम्भक साधन जितना अधिक होता है उतनी ही मनकी लयावस्था हुआ करती है । नासापुट द्वारा वायु आकर्षणपूर्वक केवली कुम्भक किया जाता है । केवली की क्रिया सहज कहाती है क्योंकि उसमें रेचक पूरकका कोई क्रम नहीं है और न कुम्भक की कठिनता है । प्राणपर कुछ आधिपत्य हो जाने से श्री गुरूपदेश द्वारा इसकी क्रिया प्राप्त होती है । प्रथम अवस्थामें प्राण वायुको नियमित करके प्राण की क्रिया संयमित करनी पड़ती है और इसकी उन्नत अवस्थामें स्वतः ही इसका

अस्याः समुन्नताऽवस्थां प्राप्य सा साध्यते स्वतः ।।६४।।
मनोऽपनीय विषयाद्भ्रूमध्ये तन्निवेशयेत् ।
प्राणाऽपाननिरोधेन जायते केवलीक्रिया ।।६५।।
समाधिदश्च त्रिविधांस्तापान्नाशयति ध्रुवम् ।
सिद्धेऽस्मिन्योगयुक्तानामप्राप्यं नैव किञ्चन ।।६६।।
केवली कुम्भकेनेयं शक्तिः कुण्डलिनी ध्रुवम् ।
प्रबुद्धा हि सहस्रारे ब्रह्मसायुज्यमेति यत् ।
षट्चक्रभेदने तस्मादेतत् साधनमिष्यते ।।६७।।
रेचकस्य पूरकस्य कौशले सुखमाश्रिते ।
सहजायां दशायां स्यादयं परिणतः ध्रुवम् ।।६८।।
खेचरीमुद्रया सार्द्धं प्राणायामे कृते पुनः ।
अस्मिन्नुत्पद्यते लाभो विशिष्टो नात्र संशयः ।।६९।।
प्राणायामो नूनमयमाधिव्याधिविमर्दकः ।
आत्मज्ञानोत्पादने च परमं कारणं भवेत् ।।७०।।

साधन हुआ करता है। इन्द्रियोंके विषयोंसे मनको हटाकर भ्रूयुगल के बीच में मन को स्थापित करते हुए अपान और प्राण दोनोंकी गति रुद्ध करनेके उपाय से केवली प्राणायामकी क्रिया होती है। केवली प्राणायाम समाधिप्रद है और त्रिविध तापनाशक है। इस प्राणायामकी सिद्धिमें योगीको कुछ भी अभाव नहीं रहता। केवली कुम्भकके द्वारा कुलकुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर सहस्रारमें ब्रह्मसायुज्यको लाभ करती है इसलिये इस प्राणायाममें षट्चक्र भेदकी क्रियाएँ भी करनी होती हैं। प्रथमतः रेचक पूरकका अनायाससाध्य कौशल अवलम्बन करने पर अन्त में वह सहज दशा में परिणत हो जाता है। खेचरी मुद्राके साथ इस प्राणायामके करने पर विशेष लाभ होता है। केवली प्राणायाम सकल प्रकार आधिव्याधिका नाशक तथा आत्मज्ञान प्रदायक है ॥५२-७०॥

ध्यान वर्णन

मन्त्रयोग, हठयोग और लययोगमें पृथक् पृथक् स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान और बिन्दुध्यान, ये तीन प्रकारके ध्यान नियत किये गये हैं। जिनमे से मूर्तिमान् इष्टदेव मूर्तिका जो ध्यान है वह स्थूलध्यान, जिसके द्वारा तेजोमय

अथ ध्यानवर्णनम्

मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगः पृथक् पृथक्।
स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानन्तु त्रिविधं विदुः ॥१॥
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं भवेत्।
बिन्दु बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥२॥
स्थूलध्यानं हि मन्त्रस्य विविधं परिकीर्त्तितम्।
उपासनां पञ्चविधामनुसृत्य महर्षिभिः ॥३॥
एकं वै ज्योतिषो ध्यानमधिकारस्य भेदतः।
साधकानां विनिर्दिष्टं त्रिविधं ध्यानधाम वै ॥४॥
ध्यानं यद्ब्रह्मणस्तेजोमयं दीपार्चिसन्निभम्।
ज्योतिध्यार्नं हि भवति प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥५॥
अहं ममेतिवत्तौ चाऽभिन्नौ हि परिकीर्त्तितौ।
ध्यानं वै ब्रह्मणस्तेजोमयं रूपं प्रकल्पयेत् ॥६॥
ज्योतिध्यार्नं भवेत्तद्धि प्राप्यं गुरुकृपावशात्।

ब्रह्मका दर्शन होता वह ज्योतिर्ध्यान और बिन्दुमय ब्रह्म और कुल कुण्डलिनी शक्तिका जो ध्यान किया जाता है वह बिन्दुध्यान कहा जाता है । मन्त्रयोगोक्त स्थूल ध्यानके भेद पञ्चोपासनाके अनुसार अनेक हैं; परन्तु हठयोगके ज्योतिर्ध्यानकी शैली एक ही है । केवल ध्यान स्थान साधकके अधिकार भेदसे त्रिविध हैं । दीप कलिकावत् तेजोमय ब्रह्मध्यानको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं, वह प्रकृति ध्यान भी है और ब्रह्म ध्यान भी है, क्योंकि "अहं ममेतिवत्" ब्रह्म और प्रकृतिमें अभेद है । तेजोमय रूपकल्पनाके द्वारा ब्रह्मध्यान करनेको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं । उसके ध्यान करनेकी शैली श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। नाभि, हृदय और भ्रूयुगल, ये तीनों स्थान ज्योतिर्ध्यानके हैं। कोई कोई योगवित् आधारपद्मरूपी चतुर्थ स्थान भी निरूपित करते हैं । ज्योतिर्ध्यानकी सिद्धावस्थामें आत्मसाक्षात्कार होता है । उपनिषत् और तन्त्रोंमें ज्योतिर्ध्यानकी बहुत कुछ महिमा कीर्तित हुई है ।।१-९।।

समाधि वर्णन

मन्त्रयोगकी समाधिको महाभाव और हठयोगकी समाधिको महाबोध

नाभिहृद्भ्रूयुगान्याहुर्ध्यानस्थानं मनीषिण: ।।७।।
स्थानभेदो विनिर्णीत: साधकस्याऽधिकारत: ।
आधारपद्ममपरं ध्यानस्थानं चतुर्थकम् ।।८।।
केचिन्निरूपयन्तीह योगतत्त्वविशारदा: ।
सिद्धे ध्याने हि प्रत्यक्षीभवत्यात्मा विशेषत: ।।
कीर्त्तितश्चाऽस्य महिमा तन्त्रेषूपनिषत्सु च ।।९।।

अथ सभाधिवर्णनम्

समाधिर्मन्त्रयोगस्य महाभाव इतीरित: ।
हठस्य च महाबोध: समाधिस्तेन सिध्यति ।।१।।
प्राणायामस्य सिद्ध्या वै जीयन्ते प्राणवायव: ।
ततोऽधिगम्यते शक्ति: पूर्णा कुम्भकसाधने ।।२।।
समाधिर्हठयोगस्य त्वरितं प्राप्यते तत: ।
शुक्रं वायुर्मनश्चैते स्थूलकारणसूक्ष्मत: ।।३।।
अभिन्नास्तत्र प्राधान्यं वायोरेव विदुर्बुधा: ।

कहते हैं । हठयोगके द्वारा समाधि सुसाध्य है । प्राणायामसिद्धिके द्वारा वायुजय हो जाने पर कुम्भक करनेकी पूर्ण शक्ति प्राप्त होनेसे हठयोग समाधिकी प्राप्ति होती है । वीर्य, वायु और मन ये तीनों स्थूल सूक्ष्म और कारण सम्बन्धसे एक ही हैं । इन तीनोंमें वायु ही प्रधान है; क्योंकि वायुके शक्तिरूप है । वायु निरोध द्वारा मनका निरोध हो जाता है; सुतरां वायुके लयसे मनका लय और मनके लयसे समाधिकी उत्पत्ति होती है । ध्यानकी सिद्धिके साथ ही साथ प्राणायामसिद्धि द्वारा समाधि प्राप्त होती है । किस अधिकारीको किस प्राणायाम के द्वारा महाबोधकी प्राप्ति होगी सो श्री गुरुदेवके द्वारा जानने योग्य है । योगचतुष्टय के ज्ञाता योगिराज ही इसका उपदेश ठीक ठीक कर सकते हैं । समाधि ही योगसाधन का परम फल है । शरीरसे मनको अलग करके उसका लय करते हुए स्वस्वरूप को प्राप्त करे, यही समाधि है । समाधिदशामें मनका लय हो जाता है और "मैं ही अद्वितीय ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त हूँ" ऐसा अनुभव होता है ॥१-९॥

इस प्रकार हठयोगसंहिता का भाषानुवाद समाप्त हुआ ।

शक्तिस्वरूपवत्त्वाद्धि तन्निरोधान्मनोजयः ॥४॥
तस्मान्मनोजयाच्चैव समाधिः समवाप्यते ।
प्राणायामे तथा ध्याने सिद्धे वै सोऽधिगम्यते ॥५॥
प्राणायामस्योपदेशः कतमायाऽधिकारिणे ।
प्रदत्तः कीदृशश्चैव महाबोधप्रदायकः ॥६॥
एतत्सर्वं हि विज्ञेयं योगज्ञाद्गुरुदेवतः ।
योगक्रियायाः परमं समाधिः फलमिष्यते ॥७॥
शरीरतो मनः सम्यगपनीय विजित्य तत् ।
स्वस्वरूपोपलब्धिर्हि समाधिरिति चोच्यते ॥८॥
अद्वितीयमहं ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपधृक् ।
नित्यमुक्ताऽस्मीति सदा समाधावनुभूयते ॥९॥
इत्यध्यात्मविद्यायां योगशास्त्रे समाप्तेयं हठयोगसंहिता ।



श्री भारतधर्म महामण्डल के शास्त्र प्रकाशन विभागद्वारा प्रकाशित दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रन्थ :-

कर्ममीमांसा दर्शन हिन्दी भाष्य

महर्षि भरद्वाजकृत नितान्त दुर्लभ ग्रन्थ कर्ममीमांसादर्शन को भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज ने अपने समाधि योग से प्राप्त किया था। महर्षि जैमिनिकृत जो कर्ममीमांसा दर्शन उपलब्ध है, उसमें केवल यज्ञ-याग का वर्णन है, जिनका अनुष्ठान इस समय असम्भव प्राय हो गया है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि, मानव के दैनिक जीवन से सम्बन्धित कर्मरहस्य तथा कर्मविज्ञान सम्बन्धी प्रथम भाग काल क्रम से लुप्त हो गया था, जिसको पूज्यपाद स्वामी जी महाराज ने यौगिक अनुसन्धान द्वारा महर्षि भारद्वाज से प्राप्त किया। महर्षि भरद्वाजकृत यह दर्शन चार पदों में विभक्त है, जिनके नाम धर्मपाद, संस्कारपाद, क्रियापाद और मोक्षपाद हैं। धर्मपाद में कर्म के साथ धर्म का सम्बन्ध, धर्म के अंगोपांग, पुरुषधर्म, नारीधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, आपद्धर्म, प्रायश्चित प्रकरण आदि धर्म सम्बन्धी अनेक विषयों का वर्णन है। संस्कारपाद में संस्कार शुद्धि से क्रियाशुद्धि कैसे होती है, कर्म से समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का कैसा सम्बन्ध है इत्यादि विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसी प्रकार क्रियापाद में क्रिया की प्रतिक्रिया कैसे होती है, जीव का परलोक में गमन कैसे होता है, भावशुद्धि से क्रियाशुद्धि कैसे होती है- आदि विषयों का भलीभाँति विवेचन किया गया है। अन्तिम मोक्षपाद में मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है इसके विज्ञान का पूर्ण विवेचन किया है।

दैवीमीमांसा दर्शन

दैवी मीमांसादर्शन भक्ति का दर्शन है। यह छठीं ज्ञानभूमिका दर्शन है। यह दर्शन शताब्दियों से लुप्त हो गया था। भक्ति के इस दर्शन के अभाव से भक्ति के आचार्यगण श्री रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि ने सप्तम ज्ञानभूमि के दर्शन वेदान्त दर्शन को ही अपने-अपने मत के अनुसार द्वैत में खींचकर भक्ति का विषय प्रतिपादित किया है। महर्षि अंगिरा के प्रसाद से भगवत्पूज्यपाद स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज ने समाधियोग से इसका आविष्कार किया तथा जनसाधारण के बुद्धिगम्य बनाने के लिये इस पर विस्तृत भाष्य का भी प्रणययन किया। इस दर्शन के रसपाद, उत्पत्तिपाद, स्थितिपाद एवं लयपाद इन चारों पादों में ब्रह्म ईश, विराट्, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जीव की पारलौकिक गति, दैवी जगत् का स्वरूप, त्रिगुण और त्रिभाव का स्वरूप अवतारतत्त्व महामाया के विद्या और अविद्या द्विविध रूप, मन्त्र की महिमा, उपासना में भक्ति का प्राधान्य, नारदादि ऋषियों के मतानुसार भक्ति के विविध लक्षण ध्यान और समाधि भेद, पराभक्ति की अवस्थाओं का वर्णन आदि अनेक विषयों का सरल विवेचन किया गया है।

पातञ्जल योग-दर्शन

महर्षि पतञ्जलिकृत योगदर्शन, सूत्र तथा हिन्दी-भाष्यसहित

भगवत्पूज्यवाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज ने इस अलौकिक दर्शन पर हिन्दी भाष्य में प्राञ्जल भाष्य संस्कृत भाषा में उपलब्ध होता है। इस पर विस्तृत भाष्य हिन्दी भाषा में प्रणयन करके पूज्यवाद ने योगमार्ग पथिक जिज्ञासु जनों का अमित उपकार किया है।

दर्शनादर्श संस्कृत-हिन्दी अनुवाद सहित

जिस प्रकार मनुष्य स्वच्छ दर्पण में अपना मुख भलीभाँति देख सकता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ के पढ़ने से दर्शन का विषय भलीभाँति समझ में आ जाता है।

वेदान्त दर्शन चतुःसूत्री हिन्दी भाष्य

वेदान्त दर्शन के प्रथम चार सूत्रों का विस्तृत हिन्दी भाष्य है। वेदान्त दर्शन के ये चार सूत्र ही इस दर्शन की मूल भित्ति हैं।

धार्मिक ग्रन्थ

सनातन धर्म का विश्वकोष - धर्मकल्पद्रुम

धर्मकल्पद्रुम का जैसा नाम है, वैसे ही इसके गुण हैं। वास्तव में यह सनातन धर्म का कल्पवृक्ष ही है। सनातन धर्म का ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका इस वृहद् ग्रन्थ में भलीभाँति निरूपण न किया गया हो। इस एक ही ग्रन्थ के अध्ययन से सनातन धर्म का सर्वांगुर्ण व्यापक स्वरूप जिज्ञासु के समझ में आ जाता है। भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के सुयोग्य शिष्य पूज्यपाद स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपने परमाराध्य गुरुदेव के आदेशानुसार इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इस ग्रन्थ से आजकल के अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रन्थों और धर्म प्रचार के द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थ वैदिक सनातन धर्म का प्रचार होगा। इस ग्रन्थ-रत्न में साम्प्रादायिक पक्षपात लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्ष रूप से सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं।

प्रवीणदृष्टि में नवीन भारत।

श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित

इस ग्रन्थ में आर्य जाति के आदि का वासस्थान, उन्नति का आदर्श निरूपण, शिक्षादर्शन, आर्य जीवन, वर्णधर्म आदि विषय वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणों के साथ वर्णित हैं।

साधनचन्द्रिका।

श्री स्वामी दयानन्द विरचित

इसमें मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग इन चारों योगों का संक्षेप में अतिसुन्दर वर्णन किया गया है।

शास्त्रचन्द्रिका।

वेद और वेदसम्मत दर्शन पुराणादि शास्त्र के आधार पर पारलौकिक विद्या के दिग्दर्शनार्थ यह ग्रन्थ इस विचार से बनाया गया है कि जिससे विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हो सके।

धर्मचन्द्रिका।

श्री स्वामी दयानन्द विरचित

बालकों के पाठनोपयोगी उत्तम धर्मपुस्तक है। इसमें सनातनधर्म का उदार सार्वभौम स्वरूप वर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गों का विस्तृत वर्णन, वर्ण धर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजा धर्म के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। धर्म विज्ञान, सन्ध्या, पञ्च महायज्ञ आदि नित्य कर्मों का वर्णन, षोड़शसंस्कारों के पृथक्-पृथक् वर्णन और संस्कारशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्ष के यथार्थ मार्ग का निर्देश किया गया है।

आर्य्यगौरव।

श्री स्वामी दयानन्द विरचित

आर्यजाति का महत्त्व जानने के लिये एक ही पुस्तक है।

नीतिचन्द्रिका।

श्री स्वामी दयान्द विरचित

मानवीय जीवन का उन्नत होना नीतिशिक्षापर ही अवलम्बित होता है। कोमलमति बालकों के हृदयों पर नीतितत्त्व संचत करने के उद्देश्य यह पुस्तिका लिखी गयी है। इसमें नीति की सब बातें ऐसी सरलता से समझायी गयी हैं कि, इस एक के ही पाठ से नीतिशास्त्र का ज्ञान हो सकता है।

चरित्रचन्द्रिका।

सम्पादक पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

इस ग्रंथ में पौराणिक ऐतिहासिक और आधुनिक सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्र वर्णित हैं।

धर्मप्रश्नोत्तरी।

श्री स्वामी दयानन्द विरचित

सनातन धर्म के प्राय: सब सिद्धान्त अतिसंक्षिप्त रूप से इस पुस्तिका में लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरी की प्रणाली ऐसी सुन्दर रखी गयी है कि, छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वों को भलीभाँति हृदयङ्गम कर सकेंगे।

परलोक-रहस्य

श्री स्वामी दयानन्द विरचित

मनुष्य मरकर कहाँ जाता है, उसकी क्या गति होती है, इस विषय पर वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणों के साथ विस्तृत रूप से वर्णन है।

चतुर्दशलोकरहस्य।

श्रीमान् स्वामी दयानन्द विरचित

स्वर्ग और नरक कहाँ और क्या वस्तु है, उनके साथ हमारे इस मृत्युलोक का सम्बन्ध है इत्यादि विषय शास्त्र और युक्ति के साथ वर्णित हैं।

सती-चरित्र-चन्द्रिका।

श्रीमान् पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर सम्पादित

इस पुस्तक में सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि ४४ सती स्त्रियों के जीवन-चरित्र लिखे गये हैं।

नित्य-कर्मचन्द्रिका।

इस ग्रंथ में प्रात:काल से लेकर रात्रिपर्यन्त हिन्दूमात्र के अनुष्ठान करने योग्य कर्म वैदिक तान्त्रिक मन्त्रों के साथ भलीभांति वर्णित हैं।

धर्म-कर्म-दीपिका।

इस पुस्तक में कर्म का स्वरूप, कर्म के भेद, संस्कार के लक्षण और भेद, वैदिक-संस्कारों का रहस्य, त्रिविधकर्म का वैज्ञानिक स्वरूप, कर्म सम्बन्ध मुक्ति, वर्णाश्रमधर्म की महिमा, धर्म कर्म और विज्ञान का महत्त्व प्रतिपादन किया गया है, यह ग्रंथ मूल और सुस्पष्ट हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्रीय प्रमाण देकर छापा गया है।

सदाचारसोपान।

यह पुस्तक कोमलमति बालक-बालिकाओं की धर्मशिक्षा के लिये प्रथम पुस्तक है।

कन्याशिक्षासोपान।

कोमलमति कन्याओं को धर्माशिक्षा देने के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

ब्रह्मचर्यसोपान।

ब्रह्मचर्यव्रत की शिक्षा के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

साधनसोपान।

यह पुस्तक उपासना और साधनशैली की शिक्षा प्राप्त करने में बहुत ही उपयोगी है। बालक बालिकाओं को प्रारम्भ से इस पुस्तक को पढ़ाना चाहिये।

शास्त्रसोपान।

सनातनधर्म के शास्त्रों का सारांश इस ग्रन्थ में वर्णित है। सब शास्त्रों का कुछ विवरण समझने के लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बी के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है।

कल्लिपुराण

कल्लिपुराण का नाम किसने नहीं सुना है ? इस कलियुग में कल्कि महाराज अवतार धारणकर दुष्टों का संहार करेंगे, उसका पूर्ण वृत्तान्त हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

श्री भारतधर्म महामण्डलरहस्य

इस ग्रन्थ में सात अध्याय हैं। यथा-आर्य्यजाति की दशा का परिवर्तन चिन्ता का कारण; व्याधिनिर्णय, औषधिप्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञसाधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजाति की उन्नति के

विषय का असाधरण ग्रन्थ है इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है।

धर्म विज्ञान

यह ग्रन्थ रत्न तीन खण्डों में प्रकाशित है और आधुनिक विज्ञान समवन्य के साथ-साथ इसमें धर्म के विविध अङ्गो पर प्रकाश डाला गया है। समय समय पर लोगों द्वारा की गयी एवं की जाने वाली शंकाओं का समाधान अत्यन्त सुन्दर और सुबोध भाषा में किया गया है। इसमें आधुनिक विज्ञान के साथ धर्म सम्बन्धी रहस्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। धर्म सम्बन्धी सभी बातों को जानने के लिये यह पुस्तक बड़ी अनूठी है।

मन्त्रयोगसंहिता

भाषानुवादसहित। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है इसमें मन्त्रयोग के १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह से वर्णन किये गये हैं।

हठयोगसंहिता

भाषानुवादसहित। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोग के ७ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह से वर्णन किये गये हैं।

राजयोग-संहिता

यह संस्कृत हिन्दी में प्रकाशित योग सम्बन्धी संहिता है। राजयोग विषयक ऐसा ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसमें राजयोग के लक्षण, अङ्ग, कर्मभूमि, उपासनाभूमि ज्ञानभूमि, वैराग्य, धारण, ध्यान समाधि प्रस्थानत्रय राजयोग-आवश्यकता, शमदम, तितिक्षा विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। सभी योगों का राजा होने के कारण ही इसे राजयोग कहा गया है।

लययोग-संहिता

यह ग्रन्थ संस्कृत का हिन्दी भाषानुवादसहित एक नूतन प्रकाशन है। इस योग विषयक संहिता में विन्दु ध्यान, एवं सूक्ष्म क्रियाओं का बड़े ही सरलता से मार्मिक वर्णन सरल हिन्दी में किया गया है। आजतक योगविषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। इसमें लययोग के सभी आवश्यक विषयों जैसे-यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, स्वरसाधन, प्रत्याहार, धारण, षट्चक्र भेद, ब्रह्मरन्ध वर्णन, शिवशक्तियोग, ध्यान, लक्षण लयक्रिया, साधनवैचित्र्य, अधिकारी निर्णय और समाधिआदि विषयों पूर्णरूप से वर्णन किये गये है।

तत्त्वबोध

भाषानुवाद और वैधानिक टिप्पणी सहित। यह मूल वेदान्तग्रन्थ श्री शंकराचार्य कृत है।

स्तोत्र कुसुमाञ्जलि

इसमें पंचदेवता, अवतार और ब्रह्म की स्तुतियों के साथ-साथ आज कल की आवशकतानुसार धर्मस्तुति, गंगादि पवित्र तीर्थों की स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियाँ और काशी के प्रधान देवता श्री विश्वनाथ की स्तुतियॉ। हैं।

सप्त गीतायें

शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य एवं गणपति की पञ्चोपासना के अनुसार पाँच प्रकार के उपासकों के लिये पाँच गीतायें-श्री विष्णुगीता, श्री सूर्यगीता, श्रीधीशगीता, श्रीशक्तिगीता और श्रीशंभुगीता एवं संन्यासियों के लिए संन्यासगीता और साधकों के लिए गुरुगीता भाषानुसार सहित छप चुकी है। इन सातों गीताओं में अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्ड के रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासना से सम्बन्ध रखने वाले विषय सुचारूरूप से प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीतायें उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेव की गीता से तो लाभ उठायेगा ही, किन्तु अन्य चार गीताओं के पाठ करने से भी वह अनेक उपासनातत्त्वों को तथा अनेक वैज्ञानिक रहस्यों को जान सकेगा और उसके अन्त करण में प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थों से जैसा विरोध उदय होता है, वैसा नहीं होगा, वह परम शान्ति का अधिकारी होगा। संन्यासगीता में सब सम्प्रदायों के साधु और संन्यासियों के लिये सब जानने योग्य विषय सन्निविष्ट हैं। संन्यासिगण इसके पाठ करने से विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थों के लिए भी यह ग्रंथ धर्म का ज्ञान भण्डार है।

श्रीरामगीता

श्री महर्षि वशिष्ठकृत तत्त्वसारायण में कथित यह श्रीरामगीता है परमधार्मिक विद्वान् स्वर्गवासी भारतधर्मसुधाकर श्री महारावलजी साहब सर विजय सिंह बहादुर के० सी० आई० ई० डूँगरपुर राज्याधिपति के पुरुषार्थ द्वारा इसका सुललित हिन्दी भाषा में अनुवाद हुआ है और विस्तृत वैज्ञानिक टिप्पणियों के द्वारा इसके दुरूह विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है इन टिप्पणियों के महत्त्व को सब दर्शनों का ज्ञाता और सब योगों का अभ्यासी समझकर आनन्दित हो सकता है-

कहावत रत्नाकर

न्यायावली और सुभाषितावली सहित । परमधार्मिक तथा विद्वान स्वर्गीय श्रीमान् भारतधर्म-सुधाकर हिजहाइनेस महारावलसर विजयसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० डूँगरपुर नरेश के सम्पादकत्व में इस पुस्तक का छपना प्रारम्भ हुआ था, जिसको श्रीमहामण्डल के शास्त्रप्रकाशविभाग की पण्डितमण्डली ने सुचारू रूप से समाप्त किया । हिन्दी भाषा का यह एक अद्वितीय ग्रंथ है, इसमें हिन्दी भाषा की प्रधानता रखकर पाँच भाषाओं में कहावतें दी गयी हैं, हिन्दी और उसकी संस्कृत कहावत, अंग्रेजी कहावत, फारसी कहावत और उर्दू अरबी कहावत । ये कहावतें प्रत्येक भाषा के प्रधान-प्रधान विद्वानों द्वारा संग्रहीत ओर संशोधित हुई हैं, इसी प्रकार संस्कृत न्यायावली और अंग्रेजी अनुवाद और विस्तृत अंग्रेजी तथा हिन्दी अनुवाद और हिन्दी विवरण दिया है । अन्त में संस्कृत सुभाषितवाली हिन्दी अनुवाद सहित दी गयी है । हिन्दी कहावत, संस्कृत न्यायावली और संस्कृत सुभाषितवाली को सर्वसाधारण की सुविधा के लिये अकारादि क्रम से दिया गया है ।

गीतार्थ चन्द्रिका
श्रीस्वामी दयानन्द विचरित

श्रीस्वामीजी की विद्वत्ता किसी से छिपी नहीं है । उन्होंने बहुत ही परिश्रम के साथ गीतापर यह अपूर्व टीका लिखी है । केवल हिन्दी भाषा के जानने वाले ही इसके द्वारा गीता के गूढ़ रहस्य को जान सकें- इसी लक्ष्य से यह टीका लिखी गयी है । इसमें श्लोक के प्रत्येक शब्द का हिन्दी अनुवाद, समस्त श्लोक का सरल अर्थ और अन्त में एक अति मधुर चन्द्रिका द्वारा श्लोक का गूढ़ तात्पर्य बतलाया गया है । इसमें किसी का आश्रय न लेकर ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का सामञ्जस्य किया गया है । भाषा अतिसरल तथा मधुर है । इस ग्रन्थ के पाठ करने से गीता के विषय में कुछ भी जानने को बाकी नहीं रह जाता । हिन्दी भाषा में ऐसी अपूर्व गीता अबतक निकली ही नहीं है ।

सनातनधर्म-दीपिका

इसमें धर्म, नित्यकर्म, उपासना, अवतार, श्राद्ध-तर्पण, यज्ञोपवीत संस्कार, वेद और पुराण, वर्णधर्म, नारीधर्म, शिक्षादर्श और उपसंहार शीर्षक निबन्ध लिखकर श्रीस्वामीजी ने बड़े ही सरलभाषा में सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्त समझा दिये हैं ।

त्रिवेदीय संध्या
शास्त्रविशारद महोपदेशक
पं० राधिका प्रसाद वेदान्तशास्त्री प्रणीत

इसमें तीनों वेदों की सन्ध्या दी गई है । हर एक मन्त्र का हिन्दी में अन्वय और विशुद्ध सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है । सन्ध्या क्यों की जाती है ? सन्ध्या का स्वरूप क्या है ? उपासना की रीति से सन्ध्या के द्वारा अपने-अपने जीवन को कैसे उन्नत कर सकते हैं, सन्ध्या किस समय की जाती है और कैसे की जाती है, सन्ध्या न करने से क्या हानि होती है, सन्ध्या का वैज्ञानिक तात्पर्य क्या है आदि संध्या सम्बन्धी सब बातें युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध की गयी है ।

"THE WORLD'S ETERNAL RELIGION"

A Unique work on Hinduism in one volume, Containing 24 Chapters with tricolour illustration, glossary etc. No work has hitherto appeared in

English that gives in a suggestive manner the real exposition of the Hindu religion in all its phases. The book has perfectly supplied this long-felt Want Name of the chapters are as follows :- 1 Foreword, 2 Universal Religion, 3 Classification, 4 Law of Karma, 5 Worship in all its phase, 6 Practice of Yoga through Mantras, 7 Practice of Yoga through physical exercise, 8 Practice of Yoga through inner force of Nature. 9 Yoga through power of reasoning, 10 The Mastic Circle, 11 Love and Devotion, 12 Plans of knowledge, 13 Time, space creation, 14 the Occult world, 15 Evolution and Reincarnation, 16 Hindu philosophy, 17 The System of Castes and Stages of Life, 18 Woman's Dharma, 19 Image Worship, 20 The great Sacrifices, 21 Hindu Scriptures, 22 Liberation, 23 Education, 24 Reconciliation of all Religions The followers of all religions in the world will profit by the light the work is intended to give.

ब्रह्मविद्या का मूलग्रन्थ

सरल हिन्दी में वेदान्त का यह ग्रंथ है । थियोसाफीकी दृष्टि से ब्रह्मविद्या का रहस्य इस पुस्तक में लिखा गया है ।

गोव्रत-तीर्थ-महिमा

इस पुस्तक में गो-महिमा व्रतोत्सव महिमा और तीर्थ महिमा, शास्त्रीय प्रमाण तथा वैज्ञानिक युक्ति के साथ विस्तृत रूप से वर्णित है । धर्मल्पद्रुम के अष्टमखण्ड के प्रथम तीन अध्याय का ही 'गोव्रत तीर्थ महिमा' देकर पृथक् पुस्तक रूप से प्रकाशित किया गया है ।

मार्कण्डेय पुराण

महर्षि वेदव्यास का संसार प्रसिद्ध यह ग्रंथ है । भाषा बड़ी सरल और हिन्दी टीका सहित तीन खण्डों में प्रकाशित है ।

भारत वर्ष का इतिहास

(लेखक-पं० गोविन्दशास्त्री दुग्वेकर)

इस ग्रन्थ को हिन्दी जगत् के नामाङ्कित लेखक पं० गोविन्दशास्त्री दुग्वेकर ने भारत धर्म महामण्डल के संस्थापक भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञाननन्द जी महाराज की आज्ञा के अनुसार उन्हीं के शब्दों में लेखबद्ध किया है । ग्रन्थ के बारह अध्याय हैं । यथा-(१) ब्रह्माण्ड और भारतद्वीप, (२) ब्रह्माण्ड का मानचित्र, (३) जगद्गुरु भारतद्वीप, (४) सृष्टि प्रकरण और कालचक्र, (५) मनुष्य सृष्टि का आदि स्थान और वर्णाश्रम बन्ध, (६) भारतद्वीप का सामाजिक संघटन, (७) वेद और शास्त्र का अनादित्व, (८) भारतद्वीप का धर्म और उसकी ज्ञानगरिमा, (९) राजानुशासन विज्ञान, (१०) प्राचीन भारतद्वीप की शिक्षा प्रणाली (११) रामायण, (१२) महाभारत ।

इस ग्रन्थ के इन अध्यायों के नाम से इसके महत्वपूर्ण विषयों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है । इसके अध्ययन से प्राचीन भारत के आदर्श राज-शासन प्रणाली, सामाजिक संघटन, शिक्षा प्रणाली, भारत का जगद्गुरुत्व किन कारणों से है, आदि अनेक विषयों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है । इसे प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर में अवश्य रखना चाहिये तथा अध्ययन करना चाहिये ।

भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज का जीवनवृत्त

यह ग्रन्थ श्रीभारतधर्म महामण्डल के संस्थापक तथा संचालक भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र है । इसमें उनके प्रारम्भ से लेकर महानिर्वाण तक के अलौकिक तथा अतिमानुषिक लोक हितकर कार्यों का वर्णन है । शास्त्रों में कहा है, "महाजनों येन गत: स: पन्था" अर्थात् महापुरुष जिस मार्ग से गये हैं, वही मनुष्यों के चलने योग्य मार्ग है । महापुरुषों के जीवन-चरित्र के अध्ययन अध्यापन तथा अनुशीलन से इसी मार्ग परिचय पत्र प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ को अवश्य प्रत्येक व्यक्ति को संग्रह करना चाहिये ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल के सदस्य बनकर धर्मसेवा का पुण्य प्राप्त करें।

श्रीभारतधर्म महामण्डल के सदस्य बनकर अपने धर्म, अपनी गौरवान्वित प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन परम्परा की रक्षा तथा प्रचार में सहायक बनकर पुण्य तथा यश प्राप्त करें। श्रीभारतधर्म महामण्डल के पाँच श्रेणी के सदस्य होते हैं, यथा-वंशानुक्रम संरक्षक, चन्दा एक बार कम से कम ५०००) पाँच हजार, आजीवन संरक्षक, चन्दा कम से कम एक बार २०००) दो हजार, उपसंरक्षक, चन्दा कम से कम एक बार १०००) एक हजार, आजीवन प्रतिनिध कम से कम एक बार २००) दो सौ रुपये तथा प्रतिनिधि २५) पचीस रुपये वार्षिक। श्रीभारतधर्म महामण्डल के उपर्युक्त सदस्यों में से संरक्षकों तथा आजीवन सदस्यों से श्री महामण्डल की संचालक समिति अखिल भारतीय मन्त्री सभा का निर्वाचन होता है और यही मन्त्री सभा श्रीमहामण्डल के सब कार्य विभागों की व्यवस्था तथा संचालन करती है; आप भी श्री महामण्डल के उपर्युक्त किसी भी श्रेणी के सदस्य बनकर श्रीमहाण्डल के संचालन में सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

पत्राचार का पता-
प्रधान मन्त्री
श्रीभारतधर्म महामण्डल
प्रधान कार्यालय लहुराबीर, वाराणसी-२२१००१